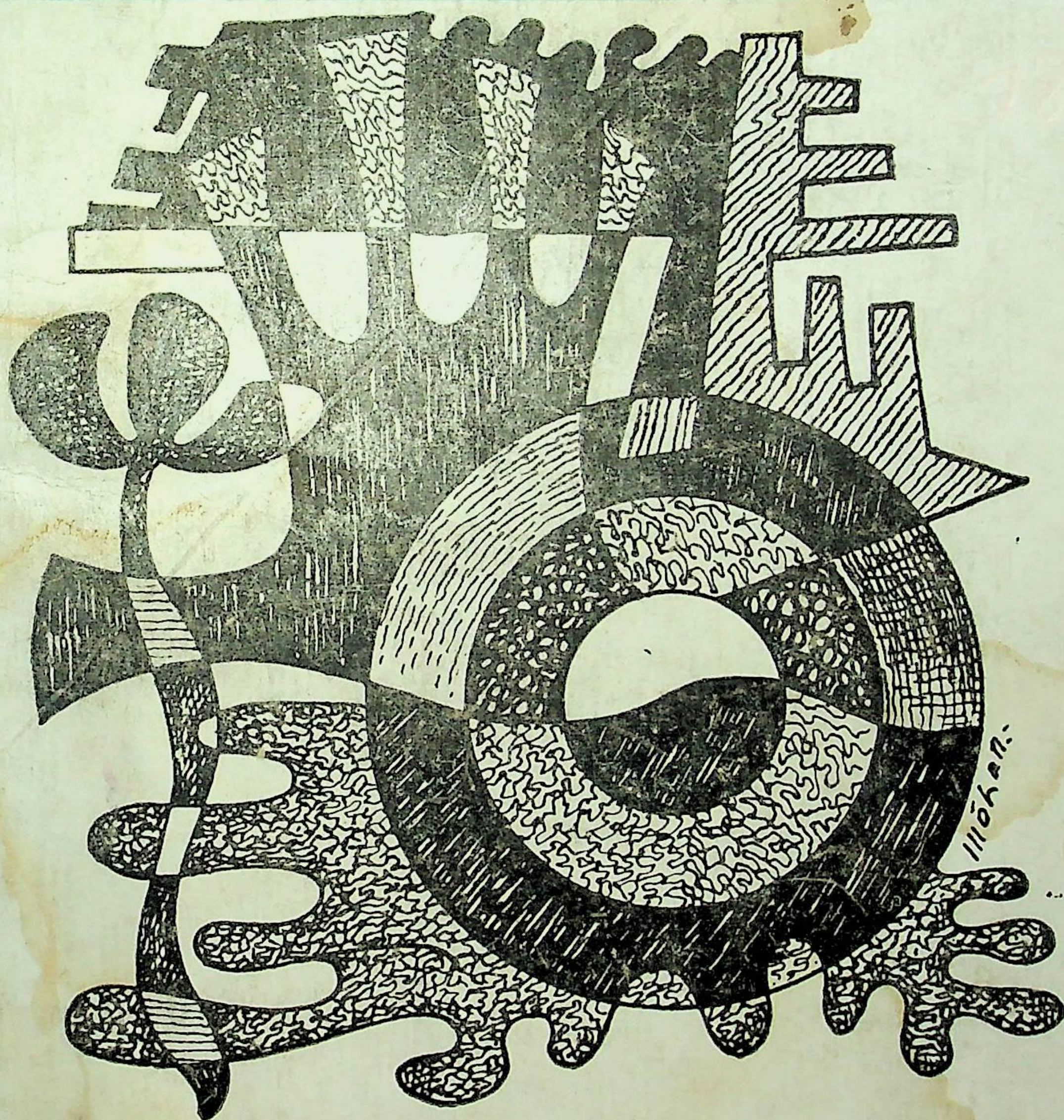
४२

शीराज़ा

हिन्दी



अप्रेल-जून १९७८

४२

शीराज़ा
हिन्दी

प्रमुख सम्पादक
मुहम्मद यूसुफ टैंग

सम्पादक
रमेश मेहता

जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, जम्मू

वर्ष : १४ | अप्रेल-जून १९७८ | अंक : १

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार

रमेश मेहता

सम्पादक : **शीराज़ा हिन्दी**

जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़,

नहर मार्ग, जम्मू

फोन नं० : ५०४०

वार्षिक शुल्क : आठ रुपये

यह अंक : दो रुपये

जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़,
स्वत्वाधिकारी के लिए श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग, सचिव द्वारा
प्रकाशित एवं अमर आर्ट प्रेस, मोती बाज़ार, जम्मू में मुद्रित

शीराज़ा हिन्दी

पूर्णांक : ४२

वर्ष : १४ | अप्रेल-जून १९७८ | अंक : १

अनुक्रमणिका

कविताएँ

स्थायी स्तम्भ



इतिहास

जम्मू के भारतेन्दु युग से द्विवेदी युग तक के प्रसिद्ध हिन्दी कवि

—डॉ० गंगादत्त 'विनोद'

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का युग १८५०–१८८५ तक रहा। इस युग में हिन्दी कविता ने जो नया क्षितिज प्राप्त किया, उसी के समानान्तर जम्मू-कश्मीर राज्य में भी हिन्दी-कविता का एक मंच स्थापित हुआ। यह जान कर आपको आश्चर्य होगा कि अहिन्दी भाषी प्रान्त में इस प्रकार भारतेन्दु की साहित्यिक गतिविधियों का साथ देते हुए तत्कालीन ब्रज भाषा में प्रौढ़ कविताएं लिखी जाने लगीं एवं इस क्षेत्र के पके पकाए तथा तपे तपाए हिन्दी कवि रंगमंच पर उतर कर भारतेन्दु-दल का साथ देते हुए आगे बढ़ने लगे। उनका उस युग का प्रकाशित साहित्य जिसकी दौड़ केवल राज्यान्तर्गत ही रही, आज भी हमारे सामने है। उनकी भाषा, भाव, छन्द, कल्पना एवं रस सब उच्च कोटि के होकर उनके अहिन्दी-भाषीपन को प्रकट नहीं होने देते। ऐसे अनेक कवि होंगे जो किसी रचना के आज उपलब्ध न होने के कारण अंधकार के गर्भ में विलीन हो गए हैं। सौभाग्य से जिन कवियों की रचनाएं आज उपलब्ध हुई हैं, उनका संक्षिप्त वृत्तान्त यहां दे देना ही इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

कवि दत्त :—

कवि दत्त जम्मू प्रान्त के 'भड्डू विल्लौर' नामक गांव के निवासी थे, जिनका समय सम्वत् १८२८-१९०० (ई० १७७२-१८४४)[1] के लगभग पड़ता है। ये वहां के शासक महाराजा ब्रजराजदेव के सभा कवि थे। सर्वप्रथम उनकी आज्ञा पाकर कवि ने संस्कृत छन्दोबद्ध कृष्ण महिम्न स्तोत्र की सटीक रचना की। तत्पश्चात् आप हिन्दी-काव्य सृजन में

१. नाग दिग्गज भू संज्ञे वर्षे विक्रम भूपतौ।
स्तवोऽयं कृष्ण जन्माहे दत्तेना नामि पूर्णताम्॥ —दत्तू कृत कृष्ण म० स्तो०

जुट गए। इनका प्रथम हिन्दी खण्डकाव्य **'वीर विलास'** है जो महाभारत के द्रोण पर्व का व्रज छन्दों में भावानुवाद है। दूसरी रचना **'व्रजराज-पंचाशिका'** है। इसमें इन्होंने अपने आश्रयदाता की वीरतापूर्ण प्रशस्ति लिखी हुई है। तीसरी रचना बारहमासा' है जिस में वसन्त आदि ऋतुओं का सुमधुर चित्रण व्रज पद्यों में हुआ है।

कवि दत्त की मातृभाषा डोगरी थी किन्तु संस्कृत एवं हिन्दी पर इनका प्रगाढ़ अधिकार था, जिसके फलस्वरूप इन्होंने दोनों भाषाओं में अमर रचनाएं प्रस्तुत कीं। इनकी उपर्युक्त तीनों हिन्दी रचनाएं **'कवि दत्त ग्रन्थावली'** के नाम से **जम्मू कश्मीर राज्य की साहित्य अकादमी** द्वारा हाल में ही प्रकाशित की गई हैं तथा संस्कृत रचना कृष्ण महिम्न स्तोत्र जम्मू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है। कवि दत्त भारतेन्दु से भी कुछ पहले के हैं।

कवि नील कण्ठ :—

भारतेन्दु युग के समानान्तर कवियों में इनका नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। जम्मू कश्मीर नरेश महाराज श्री रणवीर सिंह का राज्यकाल (सन् १८५६–८५) भारतेन्दु काल की समाप्ति की सीमा तक पहुंचता है। कवि नीलकण्ठ इन्हीं के आश्रित कवि थे। रणवीर सिंह जैसा विद्या प्रेमी एवं हिन्दी संस्कृत भाषोद्धारक महाराजा अपना उदाहरण आप ही है। इनकी दोनों भाषाओं की सेवा का प्रमाण जम्मू कश्मीर के अनुसन्धानालयों में उस युग का नव-निर्मित एवं प्रकाशित साहित्य है। इन्होंने **'विद्या-विलास'** प्रेस की स्थापना इसीलिए की कि दरबारीय पण्डित मण्डली से हिन्दी संस्कृत में जो साहित्य लिखाया जाये, उसका प्रकाशन यहीं से हो और लगभग ३५ वर्षों तक इस प्रकार का सृजन और प्रकाशन चलता रहा जिसके मुख्य स्तम्भों में कवि नीलकण्ठ का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इनका जन्म जम्मू शहर से २० किलोमीटर की दूरी पर 'शामा चक्क' नामक गांव में हुआ किन्तु विद्वान् लेखक बन कर इन्हें जब महाराजा के दरबार में प्रतिष्ठित स्थान मिल गया तो यह जम्मू शहर के मोहल्ला 'मस्तगढ़' में आकर रहने लगे। साहित्य की दिशा में इनकी गतिविधियां तीन भागों में बंटी हुई थीं—१. पुस्तक सृजन, २. संस्कृत पुस्तकों का हिन्दी गद्य में अनुवाद, ३. अन्य विद्वानों की लिखी गई संस्कृत पुस्तकों पर हिन्दी टीका और उनके प्रकाशन की व्यवस्था।

इनकी प्रथम रचना **'वंशावली'** है, जिस में डोगरा राजवंश का महाभारत [illegible] महाराज रणवीर सिंह के काल तक का इतिहास हिन्दी गद्य में लिखा हुआ है। इस समय यह पुस्तक अनुपलब्ध है। इस अप्रकाशित रचना की मौलिक पाण्डुलिपि आज से १२ वर्ष पहले लेखक ने श्रीनगर के किसी कश्मीरी विद्वान् के पास देखी थी। उस समय इतनी जीर्ण-शीर्ण थी कि ऐसा मालूम पड़ा यदि वैज्ञानिक ढंग से इसकी सुरक्षा का प्रबन्ध न किया गया तो इसके शीघ्र समाप्त प्राय होने में कोई सन्देह नहीं होगा। और शायद हुआ भी ऐसा ही है। इसकी भाषा का नमूना नीचे दिया जा रहा है :—

"शल्य ने स्यालकोट बसाया। यह चन्द्रवंशी भया, जिनसे इस नगरी को राजधानी वनाया। अर्जुन का पुत्र वसुवाहन भाईयों से विगड़ कर दल बल कन्ने जम्मू दे वावर गढ़ में सरूईसर से बलौर तक नगर बसा कर उत्थें राज करता भया"।

कवि की दूसरी रचना **'कर्ति विलास'** है, यह उसी युग के विद्या-विलास प्रेस में सन् १८८६ में छपी। इसमें महाराज रणवीर सिंह की थोड़ी सी पीढ़ियों का भावना और कल्पनापूर्ण हिन्दी पद्यों में चित्रण किया गया है किन्तु अधिकतर वर्णन महाराज रणवीर सिंह के गुणों और विद्यानुराग का ही है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

वन्दे श्री जगदीस को गुरु चरणन धर ध्यान।
गज मुख गौरी पूज कै पाछे करौं बखान॥

कुण्डली रघुकुल मांहि विचारिये रक्षक श्री कुलदेव।
पदों श्रीपद ताहु के वरणों रघुकुल मेव॥
वरणों रघुकुल मेव सेव सेवक वरदाई।
त्रिकुटाँ श्री परमेश्वरी भैड़ कालिका माई॥
नील कण्ठ कवि ज्यों कहै श्री रघुनाथ सहाई।
मिल पांचों रक्षक भए केवल रघुकुल मांहि॥

यह सर्वमान्य तथ्य है कि पिछले हिन्दी संस्कृत कवि अधिकतर राजाश्रय पाकर लिखते रहे। उनकी रचनाओं में यदि विकृतियाँ आ गई हैं तो आज के चिन्तन के मानदण्डों पर परख कर उनकी उपादेयता को मात्र इसलिये नकारा नहीं जा सकता, कि उनके साथ आजके साहित्योद्गम का इतिहास जुड़ा हुआ है, बल्कि यह कहना होगा कि इस युग की आधार शिला भी वही युग है। इस सन्दर्भ में उनका साहित्यिक महत्त्व और भी बढ़ जाता है। साहित्य के अति प्राचीन युग के विखरे हुए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को जुड़ाने में ये रचनाएं ही एकमात्र कारण बन सकती हैं।

उपर्युक्त 'कुण्डलियों' में कवि द्वारा पुस्तक के उपक्रम की भावना मङ्गलाचरण के रूप में प्रस्फुटित हुई है। कवि का कथ्य तो आगे चलने लगता है। देखिए एक पद्य (कवित्त) में—

हरि देव जम्बू पत गजे सिंग आगे सुत ध्रुवदेव ताको सूर्त सिंह साब हैं।
आगे श्री जरावर सिंह श्री किशौर सिंह ताको आगे श्री गुलाब सिंह पदवी महाराज है।
अब श्री रणवीर सिंह गुलाब सिंह जू की अंश युग युग को राज जाहू सो काज है।
धन्य श्री निशौर सिंह श्री गुलाब सिंह धन्ध धन्य रणवीर सिंह हिन्दू पत लाज है।

इसके अतिरिक्त रणवीर रत्नमाला, रणवीर भाषा प्रकाश, सार संग्रह, कीर्ति विलास, त्रिकुटा रहस्य[2] ये इनकी प्रधान रचनाएं हैं, जो उसी युग में विद्या-विलास प्रेस से छपी थीं। ये कृतियां यद्यपि अब अनुपलब्ध हैं तथापि जम्मू कश्मीर के प्राचीन पुस्तकालयों अथवा संस्कृत विद्वानों के घरों में पड़े पुराने बस्तों में अब भी मिल सकती हैं। इन पर अनुसन्धान की आवश्यकता है।

छन्नू लाल :—

भारतेन्दु के समकालीन जम्मू-कश्मीर राज्य के हिन्दी साहित्यकारों की तीसरी पंक्ति में कवि छन्नूलाल आते हैं। इन्होंने कान्चनाचार्य के लिखे धनंजय-विजय नाटक (व्यायोग) का हिन्दी के व्रज पद्यों में अनुवाद किया। यह पुस्तक संवत् १९३२ श्रावण तिथि २२ को महाराज रणवीर सिंह की आज्ञा द्वारा प्रकाशित की गई[3]।

पं० छन्नू लाल का जन्म सन् १८०८ ई० के लगभग जम्मू से ४२ मील दूर उधमपुर शहर के आसपास कहीं हुआ था। हिन्दी कवि होने के नाते महाराज रणवीर सिंह ने इन्हें अपने दरबार में बुला लिया एवं हिन्दी-काव्य नाटक सम्बन्धी साहित्य प्रस्तुत करने की आज्ञा दी। दरबार में रह कर इन्होंने कितना लिखा होगा—जब तक इनका अन्य साहित्य उपलब्ध नहीं होता इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त यही एक रचना इनकी कीर्ति कौमुदी की उद्घोषिका है।

कवि छन्नू लाल की कविता की भाषा चुस्त तथा शैली परम्परागत है। इनकी व्रजभाषा में इनके अहिन्दी भाषी होने का प्रभाव कहीं भी दिखाई नहीं देता। धनंजय विजय के अनुवाद का एक पद्य उदाहरणार्थ नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

भोर भए कमला जु के आंगन भौरन के घनघोर परे हैं।
मंगल गायन गावत हैं तहां ताल मृदंग विहोत धरे हैं।।
ताहि समे उडवे के लिए सब ठौरहि ठौर से केल करे हैं।
पंखन के घन घोरन सों मानो वाजे वजावत हंस खरे हैं।।

●

महाराजा रणवीर सिंह ने हिन्दी के साहित्योत्थान में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ताल-मेल स्थापित किया हुआ था। उस युग के एक दरबारी संस्कृत कवि की भारतेन्दु के स्वागत

---

२. भगवती वैष्णवी शक्ति जो जम्मू के त्रिकूट पर्वत में विराजमान होकर इस समय भारत भर के यात्रियों का आकर्षण केन्द्र बनी हुई हैं।

३. श्री रघुनाथो जयति। श्री महाराजाधिराज जम्बू-कश्मीर आदि अनेक देशाधीश... श्रीयुत महाराज साहब बहादुर की आज्ञानुसार पंडित छन्नु लाल जी ने धनंजय विजय नाटक संस्कृत से भाषा में बनाया। विद्या-विलास नामक यन्त्रालय में श्री पण्डित शंकर नाथ के अधिकार में मुद्रित भया। पंडत निधिपति ने शोधा। पोथी प्राप्ते मुल्ल ।।=)

में लिखी गई प्रशस्ति[४] से यह भी विदित होता है कि भारतेन्दु जी महाराजा के निमन्त्रण पर एक बार जम्मू भी आए थे। इस सम्बन्ध में भारतेन्दु से महाराज के पत्र-व्यवहार की खोज की जा रही है।

भारतेन्दु युग के समानान्तर जम्मू कश्मीर राज्य के हिन्दी साहित्य युग के साहित्यकारों में चौथा नाम ठा० मीहरा सिंह का आता है, जिन की एकमात्र हिन्दी कविता रचना **'भक्ति विनोद'** अनुसन्धान विभाग, श्रीनगर के पुस्तकालय में पड़ी है। यह वृहद् ग्रन्थ अपने रूप में मौलिक और भक्ति रसोद्गार से ओतप्रोत है।

इस परम्परा में पांचवा नाम श्री **राजेन्द्र प्रसाद** का आता है। इनकी एकमात्र रचना **'नाग लीला'** हिन्दी के व्रज पद्यों में अब मिली है जो पाण्डुलिपि के रूप में है। कागज़ तथा लिपिकार दोनों कश्मीरी लगते हैं। इनके जन्म समय का इस रचना द्वारा कोई पता नहीं चल पाया किन्तु भाषा, भाव, शैली पर उस युग का पूरा प्रभाव पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। पद्यों में कृष्ण लीला की सुमधुर सरसता एवं किशोरावस्था का साकार चित्र प्रस्फुटित हो उठा है। उदाहरणार्थ एक पद्य नीचे दिया जा रहा है—

एक ग्वाल करी चतुराई तांते औघट नाव छिपाई
एक जाय कृष्णा को भाषा प्रभु नाव कहां कोऊ राखा,
तब कृष्ण सवै समजावें अब नाव कहां कोऊ पावै ॥

इसी युग की परम्परा में छठा नाम आता है **पं० दुर्गा प्रसाद मिश्र** का। जम्मू से लगभग तीस किलोमीटर की दूरी पर बसे 'साम्बा' नामक शहर में मिश्र जी का जन्म सन् १८६० ई० में हुआ था। दिसम्बर मास तथा शारदीय नव-दुर्गाओं में नवमी का दिन था जब इनका जन्म हुआ। इनके पिता शहर के एक कर्मकाण्डी तथा संस्कृत विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध थे। वे सपरिवार तीर्थ-यात्रा के लिए गए और आती बार पंजाबी खत्रियों के अनुरोध से कलकत्ता में ही बस गए। वहीं पं० दुर्गा प्रसाद का जन्म हुआ। बचपन में डोगरी, हिन्दी और बंगला का घर पर ही अभ्यास किया। बनारस में आकर संस्कृत पढ़ी। तदनन्तर कलकत्ता के नार्मल स्कूल में अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त की। घर के लोग व्यापार करते थे तो इन्होंने भी पढ़-लिख कर दलाली का कार्य शुरू किया। परन्तु रुचि न होने के कारण इस व्यवसाय को छोड़कर ये पुनः काशी आए और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा चलाई गई हिन्दी पत्रिका **'कवि वचन सुधा'** के सम्वाददाता बन गए। आगे चलकर पटना के **'बिहार बन्धु'** के सहायक सम्पादक बने। यहां कुछ वर्ष कार्य करने के पश्चात् सन् १८७८ ई० में इन्होंने अपना हिन्दी साप्ताहिक **'भारत मित्र'** निकाला किन्तु चन्दा न आने पर इन्होंने यह पत्र भारत मिश्र सभा को दे दिया। इसके अनन्तर इन्होंने **'सार सुधा निधि'** हिन्दी पत्र निकाला, परन्तु एक वर्ष के बाद इसके बन्द हो जाने पर सन् १८८० ई० में **'उचित वक्ता'**

---

४. सदा हरिमतप्रचन्द्रः, हरिश्चन्द्रः मतः सदा।
सदा हि मतश्चन्द्रः हरिश्चन्द्रमतः सदा॥ (नव्य चण्डीदास)

हिन्दी पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र में गूढ़ राजनैतिक विषयों पर हास्य-व्यंग्य भरे लेख छपते थे।

जम्मू-कश्मीर नरेश महाराज रणवीर सिंह की इन पर विशेष कृपा थी। इसी कारण एक बार महाराज ने इन्हें जम्मू आकर **'जम्बू प्रकाश'** नाम से हिन्दी पत्र निकालने का आदेश भेजा परन्तु अस्वस्थता के कारण ये नहीं आ पाए। फिर भी बाद में जम्मू आकर जल्दी ही कलकत्ता चले गए, वहीं पर अपना **'उचित वक्ता'** पत्र चलाते रहे। सन् १८९० ई० के लगभग जम्मू कश्मीर नरेश प्रताप सिंह ने इन्हें कलकत्ता से बुला कर अपने राज्य के शिक्षा विभाग के सर्वोच्च पद पर नियुक्त किया किन्तु कुछ समय बाद राज्य-प्रबन्ध में विषम परिस्थितियों के पैदा हो जाने के कारण इन्होंने त्याग-पत्र देकर पुनः कलकत्ता का मार्ग पकड़ा। यहां आकर इन्होंने बिहार प्रान्त के लिये हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों की रचना की, जो स्कूल-कक्षाओं में चलती रहीं। इन्होंने जम्मू-कश्मीर के प्रशासन में उथल-पुथल की जिन घटनाओं को देखा था, उनका रहस्यपूर्ण विवरण **उचित वक्ता** के अंकों में कुछेक किस्तों में छापा, जिसके फलस्वरूप एक शिष्टमंडल पार्लियामेण्ट के सदस्य मि० ब्रेडले से मिला, जिसने जम्मू-कश्मीर राज्य के शासन में सुधार लाने की प्रार्थना की। इस शिष्टमंडल का नेतृत्व दुर्गा प्रसाद मिश्र जी ने किया। इससे उक्त प्रशासन में सुधार हुआ।

अन्त में इन्होंने **'मारवाड़ी बन्धु'** नाम से एक साप्ताहिक हिन्दी पत्र चलाया किन्तु बाद में वह भी बन्द हो गया। उस समय **अमृत बाजार पत्रिका** के प्रवर्तक बाबू शिशिर कुमार इनके मार्ग-दर्शक या गुरुवत् थे। मिश्र जी ने हिन्दी में छोटी-बड़ी सब मिलाकर २०–२२ पुस्तकें लिखीं। इन्हें उस समय बंगाल में हिन्दी पत्रों का जन्मदाता माना जाता था। आज भी इन्हें साहित्यकार होने के साथ-साथ प्रथम हिन्दी पत्रकार माना जाता है, जिन्होंने अपना केन्द्र अन्त तक बंगाल को बनाए रखा। दूसरे रूप में ये हिन्दी के अपने समय के प्रबल प्रचारकों में से एक थे। डोगरा भूमि ने उस समय उपर्युक्त हिन्दी महारथियों को पैदा करके हिन्दी को महत्वपूर्ण योगदान दिया था, इस तथ्य को आज कम ही लोग जानते हैं और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद डोगरी के नए आन्दोलन के कारण यह तथ्य और भी हिन्दी वालों के ध्यान से उतर गया है।

जम्मू के प्राचीन हिन्दी साहित्यकारों की परम्परा में सातवां नाम स्वर्गीय **श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री** का आता है।

इनकी जीवनी के साथ एक **विचित्र** घटना जुड़ी हुई है। सन् १८९८ ई० के लगभग, जम्मू से करीब पैंतीस किलोमीटर की दूरी पर बसे नगरोटा (उत्तरवाहिनी के पास) नामक गांव से एक ब्राह्मण परिवार तीर्थयात्रा के प्रसंग में काशी पहुंचा। नाव में सवार यात्रियों का झुण्ड गंगा पार रामनगर देखने जा रहा था, उसी नाव में दैववश यह परिवार भी था। किश्ती पानी की धारा में बह गई। इस परिवार की एक महिला ने डूबने पर अपने तीन वर्ष के बच्चे को एक लकड़ी के फलक पर लिटा दिया। किश्ती डूब गई परन्तु फलक पर

बहते बालक को एक मांझी ने उठा कर तट पर पहुँचा दिया। बच्चे का एक युवक भाई विनायक धर्मशाला में नौकरी करता था। दूसरे दिन शहर में डौंडी पिट गई कि वह बच्चा जिसका हो ले जा सकता है, युवक भाई पुरुषोत्तम जाकर बच्चे को लाया और अपने पास रख कर उसने उसका पालन-पोषण किया, चार-पांच वर्षों का हुआ तो वहीं संस्कृत पाठशाला में भर्ती कर दिया गया। धर्मशाला के सेठ ने बच्चे की मासिक छात्रवृत्ति तीन रुपए लगा दी। यही बच्चा आगे चल कर कलकत्ते का प्रसिद्ध रईस और विद्वान् तथा कवि के रूप में गांगेय नरोत्तम शास्त्री की संज्ञा लेकर समाज में प्रतिष्ठित हुआ। इसका गौरवपूर्ण उदय इस रूप में कैसे हुआ, इसमें भाग्य प्रेरित अनुकूल घटना चक्र ही कारण है। तीन रुपए मासिक वृत्ति लेकर बालक ने परिश्रम पूर्वक अध्ययन करके शास्त्री परीक्षा पास की। इधर धर्मशाला के सेठ विनायक मिश्र का लड़का श्री मदनमोहन बालिका सन्तानें छोड़कर पिता के सामने ही दिवंगत हो गया। घर पर लड़का उत्तराधिकारी नहीं रहा, पर्याप्त चल और अचल सम्पत्ति थी। इधर गांगेय जी ने शास्त्री की उपाधि प्राप्त कर ली थी, देखने में अत्यन्त सुन्दर युवक थे। व्यक्तित्व आकर्षक और योग्यता विशेष थी। सेठ जी ने उन से श्री मद्भागवत का पारायण सुना। पारायण बड़ा आकर्षक रहा। सेठ जी ने एक लाख रुपयों की दक्षिणा के साथ अपनी पोती (मदन मोहन की लड़की) सप्ताह पर चढ़ा दी यानी गांगेय शास्त्री जी के साथ उसका शुभ पाणि पीड़न कर दिया। अनन्तर सेठ जी की कलकत्ता में जो चल-अचल सम्पत्ति थी उसके उत्तराधिकारी गांगेय नरोत्तम शास्त्री ही बने। सुन्दर व्यक्तित्व, लक्ष्मी, विद्या और कार्यकुशलता अपने इन तीन गुणों द्वारा शास्त्री जी ने जीवन में काफी प्रतिष्ठा और नाम कमाया।

इनमें कविवर के संस्कार जन्मजात ही थे। युवावस्था के प्रथम चरण में ही हिन्दी छन्दों में गुनगुनाने लगे थे। शास्त्री परीक्षा काशी से और पंजाब विश्वविद्यालय दोनों से पास करने के बाद आपने व्याकरणाचार्य के दो खण्ड भी पास किये तथा कलकत्ता से काव्यतीर्थ परीक्षा भी पास की।

सन् १९२० में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए। किन्तु जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि श्रीमद्भागवत के पारायण ने इन्हें जीवनान्तर प्रदान किया इसी से उपर्युक्त पद छोड़कर कलकत्ता की श्वसुर-जायदाद के अधिकारी बनकर वहां रहने लगे। श्वसुर पक्ष का ऊंचा व्यापार था, उसे भी इन्होंने योग्यतापूर्वक संभाल लिया।

साहित्य साधना—श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री मूल रूप में कवि थे किन्तु इनकी गद्य-पद्य दोनों प्रकार की कुल मिलाकर संख्या में ३६ रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. रघुनाथ स्तव राज, २. गांगेय वाग्बाण, ३. प्रणय पूरण (उपन्यास), ४. अन्योक्ति रत्नावली, ५. आचरण-दर्शन, ६. श्री काशीराज पद्य पुष्पांजलि, ७. समस्यापूर्ति चन्द्रिका, ८. कर्म में धर्म (कर्मकाण्ड सम्बन्धी), ९. श्री संकट-मोचन

स्तवराज, १०. भारतीय महिला महत्त्व, ११. वैश्य समाज (सामाजिक निवन्ध), १२. गांगेय पद्य माला, १३. श्री काश्मीरेश प्रशस्ति, १४. स्पृश्यास्पृश्य व्यवस्था, १५. भारतीयोद्वोधन (राष्ट्रीय कविताएं), १६. अमन सभा नाटक, १७. गांगेय दोहावली, १८. श्री वामन विजय, १९. निर्वेद वेदन, २०. हनुमज्जन्म वर्णन, २१. साहस समालम्बन, २२. सप्न घोटक धावन (ऐतिहासिक), २३. श्री तिलक स्तोत्र, २४. गांगेय गीत गुच्छक, २५. आर्य साम्राज्य में नमक कर, २६. वेदों में विजली, २७. श्री गंगा गुणमाला, २८. श्री लण्डन स्तोत्र (व्यंग्यात्मक हास्यपूर्ण), २९. भारतीय वायुयान (वैज्ञानिक), ३०. ब्राह्मण सम्राट् पुष्पमित्र शुङ्ग (ऐतिहासिक), ३१. गांगेय तरंग, ३२. चारों वेदों में आयुर्वेद, ३३. आत्मानन्द (आध्यात्मिक), ३४. नूतन निकुंज, ३५. करुण तरंगिणी, ३६. मालिनी मन्दिर।

उपर्युक्त ग्रन्थों में अधिक संख्या पद्यमय रचनाओं की है। शास्त्री जी की ये सव कृतियां हिन्दी में हैं। अपने पूरे जीवन में ये हिन्दी के अत्यधिक अनुरागी और समर्थक रहे हैं। इसका प्रमाण इनकी उपर्युक्त हिन्दी रचनाएं ही हैं। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होकर भी इन्होंने अपनी रचनाओं का माध्यम हिन्दी रखा।

हिन्दी के तत्कालीन प्रायः सभी लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने शास्त्री जी की कृतियों तथा कला के सम्बन्ध में बड़े प्रशंसात्मक एवं भावुक उद्गार प्रकट किये हैं, जिन से इनके साहित्यिक स्तर तथा बुलन्द व्यक्तित्व का पता चलता है। शास्त्री जी की कविताएं भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों में उठने वाले मार्मिक विचारों की विविधताएं लिए हुए हैं। वीर, भक्ति, संस्कृति, आदर्श, उत्साह, करुण, शृंगार, देश-प्रेम तथा राजनीति—इनकी रचनाओं के प्रधान विषय रहे हैं। एक उदाहरण देखें—

यह प्रिय 'वसन्त' कला हृदय सा
गुरु, गठित गेंदा खिला।
उस गगन-प्रियतम से धारिणी को
गेंद का गेंदा मिला[५]॥

देशभक्ति और करुणा के भावों की अभिव्यक्ति करने में भी गांगेय जी कुशल कलाकार के रूप में अवतीर्ण होते हुए दिखाई देते हैं। उनकी पुस्तक करुण तरंगिणी में देश-पीर के वातावरण में जन-जन की समस्याओं और कुण्ठाओं के मार्मिक चित्र भिन्न-भिन्न कविताओं में उतारे गए हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि राजसी वैभव में पले इस कवि की अन्तरात्मा गरीबों, दलितों तथा देश की परतन्त्रता के साथ कितनी आत्मसात हो गई है। इनकी इन कविताओं में व्यंग्यात्मकता अधिक उभर पाई है, जिसकी चोट विदेशी शासकों पर की गई है। जैसे—

५. मालिनी मन्दिर, पृ० १५.

दिन बीत गए गिनते कितने
नहीं आयी बहार यहां फिर से।
यह बाग जो सूना हुआ सो हुआ
पनपा, न फला न सजा चिर से।।
उन व्याधों की टोली से लुण्ठित हो,
इसके तरु-वृक्ष रहे गिर से
यह घायल कोकिल देख रहा,
युग नैन हुए अब अस्थिर से[६]।

गांगेय जी ने द्विवेदी युग से लिखना शुरू किया था। १९२१ में स्वतन्त्रता के लिए किए गए सत्याग्रह में इन्होंने सक्रिय भाग लिया था। महात्मा गान्धी की पुकार सुनकर जब सारा देश आजादी के लिए कटिवद्ध हो चला तो गांगेय जी भी इस आंधी से दूर कैसे रह सकते थे। उस समय महामना मालवीय की पुण्य कृति—काशी विश्वविद्यालय—देश भक्ति और स्वतन्त्रता संग्राम की केन्द्र भूमि वनी हुई थी और महामना के जाज्वल्यमान देश भक्ति पूर्ण व्यक्तित्व की प्रेरणा कोने-कोने में व्याप्त थी। इसी परिप्रेक्ष्य ने गांगेय जी की कविता पर देश प्रेम का उत्ताप आरोपित किया। द्विवेदी युग के हिन्दी साहित्यकारों की श्रेणी में मान्य स्थान पाकर गांगेय जी की साधना लहर निरन्तर आगे बढ़ती गई। यह युग चला भी गया परन्तु कवि सन् १९५० तक अपनी निर्धारित शैली और साहित्यिक मानदण्ड के अन्तर्गत लिखता रहा। एक बात गांगेय जी में विशेष रूप से दृष्टव्य थी कि इन्होंने अपने को किसी वाद या आन्दोलन से नहीं जोड़ा। ये स्वतन्त्रता चेतक बन कर अपनी ही लहर में लिखते चले गए। हिन्दी साहित्य जगत् में इनकी ऊंचे साहित्यकारों जैसी प्रतिष्ठा बनी रही और अन्त तक चलती रही। सारांश में गांगेय जी द्विवेदी युग और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के युग में एक जैसा मान प्राप्त करने में सफल रहे। किन्तु इनकी निजी लेखन-शैली पर हिन्दी साहित्य के किसी नए आन्दोलन ने कम ही प्रभाव डाला। संस्कृत के विद्वान् होने और उसी वातावरण में आजीवन रहने पर भी गांगेय जी हिन्दी के अपने लगते थे। हिन्दी वातावरण का पूर्ण प्रभाव उन पर परिलक्षित होता था।

महाराजा रणवीर सिंह के युग में जम्मू-कश्मीर राज्य में हिन्दी साहित्य का जो दीपक प्रज्वलित हुआ था, उसका प्रकाश उत्तरोत्तर फैलता गया। यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रकाश अपने रूप में यथापूर्व रहा हो किन्तु इस राज्य में हिन्दी की साधना सदा चलती रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर क्षेत्रीय भाषाओं के उन्नयन की बात चली तो एक ओर डोगरी (जम्मू की बोली) तथा दूसरी ओर कश्मीरी बोलियां आगे आईं। हिन्दी की बात कुछ पीछे रह गई तथापि राष्ट्र भाषा के आकर्षण ने हिन्दी साहित्यकारों को निराश नहीं होने दिया। परिणाम यह हुआ कि पिछले दो दशकों के भीतर ही यहां जितनी नई

६. करुण तरंगिणी, पृ० २२.

हिन्दी संस्थाएं उभरी हैं, इतनी पीछे कभी नहीं। जिस युग का वृत्तान्त ऊपर दिया गया है, उसके छः महारथी ही इस लेख में आ पाए हैं। अन्य कवियों के सम्बन्ध में अभी और अनुसन्धान की आवश्यकता है। वस्तुतः उपर्युक्त छः महारथियों के साहित्य को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि इन में से प्रत्येक पर अलग से शोध कार्य सम्पन्न हो सकता है। किन्तु अभी तक इस दिशा की ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। इन पर एक विहंगम दृष्टि डालने का कार्य मात्र ही प्रस्तुत लेख में हुआ है। विस्तार की ओर जाना हो तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है।



शोध

विष्णु प्रताप रामायण—एक क़लमी-नुसख़ा

—डॉ० भूषण लाल कौल

कुरिगाम (काज़ीगुण्ड, कश्मीर) के निवासी पण्डित प्रकाश राम कृत 'प्रकाश रामायण' (रचनाकाल १८४७ ई० के आसपास) से पूर्व हमें कश्मीरी भाषा में किसी और रामकाव्य का उल्लेख नहीं मिलता है। 'प्रकाश रामायण' के पश्चात् महाराजा रणवीरसिंह के राज्यकाल में 'शंकर रामायण' लिखा गया और सन् १८८८ ई० में पण्डित आनन्द राम राज़दान ने 'आनन्द रामावतारचरित' लिखा। इसके पश्चात् कश्मीरी भाषा के राम-काव्य के इतिहास में पण्डित विष्णु कौल (सन् १८७५-१६४०) कृत 'विष्णु प्रताप रामायण' अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। पण्डित विष्णु कौल व्योस (अनन्तनाग, कश्मीर) गांव के निवासी थे। इनका वास्तविक नाम पण्डित विश्वम्भर नाथ कौल था। उन्हें संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, हिन्दी तथा फारसी भाषा पर विशेष अधिकार प्राप्त था। फारसी भाषा में लिखी हुई उनकी चार रचनाओं की पाण्डुलिपियां अभी भी उनके सुपुत्र पण्डित ओमकार नाथ कौल ('विष्णु-भवन' हरिसिंह हाई स्ट्रीट, अमीराकदल, श्रीनगर) के पास सुरक्षित हैं, ये रचनाएं हैं :—१. दीवाने अनादिल २. वहरतवील अनादिल ३. तरजी बन्द ४. इनशाये अनादिल। फारसी भाषा में पण्डित जी 'अनादिल' (बुलबुल) उपनाम से लिखते थे। इनके सुपुत्र पण्डित ओमकार नाथ कौल से मुझे ज्ञात हुआ कि इन्होंने महाभारत का अनुवाद भी फारसी भाषा में किया था जो आज दुर्भाग्यवश अप्राप्य है। कश्मीरी भाषा में पण्डित विष्णु कौल ने 'विष्णु प्रताप रामायण' लिखा है। इस रामायण का रचनाकाल सन् १६०६–१६१४ है। ६४१ पृष्ठों का हस्तलिखित यह रामायण लगभग ३,००० चरणों में विभाजित है तथा इसके ३४७ अध्याय हैं। ये अध्याय मुख्य रूप से ७ काण्डों में इस प्रकार विभाजित हैं :—
बाल कांड, बनवास कांड, लंका कांड, अयोध्या कांड, अश्वमेध कांड, राजलीला कांड तथा बैकुण्ठ कांड, इसके अतिरिक्त बनवास कांड में ही किष्किंधा कांड का भी उल्लेख मिलता है। मंगलाचरणार्थ कवि ने आरम्भ में महागणेश, गुरु, निर्गुण ब्रह्म, शिव-पार्वती एवं राम-सीता की वन्दना पहले संस्कृत में और फिर कश्मीरी भाषा में इस प्रकार से की है :—

नमामि श्री गणेशं चः नमामि त्वम् विनायकम्
नमामि सत्गुरं ब्रह्मः नमामि सर्व व्यापकम्
नमस्ते पार्वती पुत्रं, पिता त्वाम् च महेश्वरम्
प्रिया हे श्री परमब्रह्मः नमस्ते तत विश्वम्भरम ॥
नमामि सत्गुरूम परम पुरुषोतमम् ।
परिपूर्णम्, परमात्मकम् परमेश्वरम् ।
नारायणं श्री सत्गुरम ।[1]

इस रामायण के बालकांड में कवि ने राम के जन्म, बाल्यकाल तथा स्वयंवर की कथा का पूर्णरूप से चित्रित किया है। जनकपुरी का नाम इन्होंने 'नरोहित पुरी' रखा है तथा इस नगरी के सौन्दर्य का वर्णन सुचारू रूप से किया है। पुत्रियों के विवाह के अवसर पर विदाई का एक दृश्य इस प्रकार से कवि ने अंकित किया है :—

यि कैंछ़ा ओस तस इमकान पानस
यि कैंछ़ा ओस तस हा'जिर जहानस
यि कैंछ़ा ओस तस राजस अन्दर सार
यि कैंछ़ा ओस तस सोन मोख़्त ते दचार
पतुन हेयथ राज सोरूय दाज दितुनस ।[2]

[राजा जनक से जो कुछ सम्भव हो सकता था, जो कुछ जगत में उपलब्ध था, जो कुछ राज्य में वर्तमान था तथा जितना सोना, मोती तथा पैसा उनके पास था वह सब उन्होंने अपनी पुत्रियों के दहेज में (अपने राज्य के साथ) दे दिया।]

वृद्धावस्था के कारण राजा दशरथ ने रामचन्द्र जी को अपना राज्य देने का निर्णय किया और देश में राज्याभिषेक समारोह की तैयारियां होने लगीं। समस्त अयोध्या नगरी में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी :—

यछ़ान श्री रामचन्दरून राजसा'री
त्रिकूटी देवताहन हिंज तैया'री
सजावट वारि वाराह कारखानन
मुनकश युथ करान शाही मकानन ।[3]

[सभी लोग रामचन्द्र का राज्य चाहते हैं। तीनों लोकों के देवताओं ने भी इस शुभ अवसर की तैयारियां आरम्भ कीं। भांति-भांति से सजावट होने लगी। शाही मकानों के 'मुनकश' (नक़्शनिगारी) का काम आरम्भ हुआ।]

---

१. 'विष्णु प्रताप रामायण' (पाण्डुलिपि) पृ० २
२. 'विष्णु प्रताप रामायण' (पाण्डुलिपि) पृ० ५५
३. 'विष्णु प्रताप रामायण' (पाण्डुलिपि) पृ० ५८

वनवास काण्ड में कवि ने उस हृदय विदारक घटना का उल्लेख किया है जिसके परिणाम-स्वरूप राम अपनी पत्नी सीता एवं अनुज लक्ष्मण के साथ वन चले जाते हैं। १४ साल का वनवास पूरा करने तथा पितृ आज्ञा का पालन करने के हेतु राम नखाद (निषाद) की नाव में बैठकर नदी पार उतरे तथा दण्डक वन पहुंचे। इस वन्य-प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है :—

दण्डक वनसई अन्दर कम बाग तय राग
इन्द्र लूकस थवान तिम बर जिगर दाग
गुलन गुलज़ारनई अन्दर बहारा।
हराहर चोर तरफ़ सब्ज़ज़ारा।[४]

[दंडक वन अति सुन्दर प्रेमपूरित पुष्प वाटिकाओं का समूह है। यहां इन्द्रलोक का सौन्दर्य भी लज्जा जाता है। हर तरफ वहार छाई हुई है। नाना रंगों के फूल अपना जौबन दिखा रहे हैं। गुलोगुलज़ार दण्डक वन में चारों ओर हरियाली छाई हुई है।]

कुछ समय के पश्चात् रामचन्द्र सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट पहुंच जाते हैं। कवि ने चित्रकूट के लिए 'चन्द्रकूट' नाम का प्रयोग किया है। यहां उनकी भेंट गौतम, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण तथा अतरमुनि से होती है। यहीं राम के चरण स्पर्श से अहिल्या का उद्धार होता है। इसके पश्चात् मारीच की कथा का उल्लेख है और रावण द्वारा सीता हरण का करुणाजनक प्रसंग कवि ने अत्यन्त कलात्मकता के साथ चित्रित किया है। सीता लंका में पहुंचती है और मन्दोदरी सीता को पहचान लेती है। प्रस्तुत रामायण में सीता को मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न बताया गया है। यही कारण है कि मन्दोदरी सीता को बेटी कह कर पुकारती है। राम और लक्ष्मण सीता को ढूंढते-ढूंढते किष्किंधा पुरी पहुंचते हैं जहां उनकी भेंट हनुमान और सुग्रीव से होती है तथा राम छल द्वारा बाली का वध करते हैं। तीर लगने के बाद बाली वास्तविकता को समझ लेते हैं और रामचन्द्र के प्रति विनती करते-करते प्राण-त्याग करते हैं :—

दिवान छुक सारनी भक्तयन च़ मंगल
अंगुद तारावती रछिज्य़न खोरनतल
अंगुद छुई दास चोनुई श्री जगतपाल
क्षमा तस प्यठ प्रभु जी कर बहरहाल।[५]

[हे प्रभु! आप समस्त भक्तों के लिए मंगलदायक हैं। अंगद और तारावती को अपने चरण-कमलों के निकट स्थान देकर, उन पर दया कीजिए। अंगद और तारा आपकी शरण हैं, वहरहाल उनके अपराधों को क्षमा करके, दया कीजिए।]

---

४. 'विष्णु प्रताप रामायण' (पाण्डुलिपि) पृ० ६२

५. वही पृ० १८५

लंका कांड में रामचन्द्र और रावण (सत् और असत्) के मध्य ज़बरदस्त युद्ध का वर्णन किया गया है। युद्ध में सच्चाई की जीत और असत् की पराजय होती है। रावण अपने अहंकार में चूर था उसे इस बात का अभिमान था कि वह अपराजेय है अतः उसका विनाश आवश्यक था और इस आवश्यकता की पूर्ति रामचन्द्र के द्वारा हुई। आजके युग में भी हमें ऐसे अनेक रावण दीख पड़ते हैं जो अपने अहंकार में चूर अन्याय और अत्याचार करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। रावण को इस बात का दम्भ था :—

ब् छुस लंकापती रावण जबरदस्त
प्रजापत राज सा'री मेयि निश पस्त
छु लरजह् म्योन प्रथ तरफा जहानस
म्य छुम यमराज थोवमुत कंद खानस ।[६]

[मैं लंकापति रावण हूं और सृष्टि के समस्त राजा मेरे सामने तुच्छ हैं। हर तरफ संसार में मेरा कोप छाया हुआ है। मैंने यमराज को कैदखाने में बन्द कर दिया है।]

चौदह वर्ष के बाद रामचन्द्र अयोध्या लौट आते हैं जिसका वर्णन अयोध्या कांड में किया गया है। धोबी और धोबिन का परस्पर झगड़ा और धोबी के व्यंग्य-कटाक्ष तथा रामचन्द्र को इसकी सूचना—सीता को घर से निकाल देने का कारण बन जाते हैं। उसे राम गर्भावस्था में घर से निकाल देते हैं और वन में वाल्मीकि के आश्रम में वह जुड़वां बालकों (लव और कुश) को जन्म देती है। इसके पश्चात् अश्वमेध काण्ड में राजा रामचन्द्र के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। धार्मिक अनुष्ठान की पूर्ति के हेतु सोने की सीता बनायी जाती है और अश्वमेध का घोड़ा सेना सहित छोड़ा जाता है। अश्वमेध के घोड़े की साजसज्जा का वर्णन कवि ने फारसी मिश्रित उर्दू भाषा में इस प्रकार से किया है :—

तिलाई साज से घोड़ सजाकर
नकारो शंख और बाजे बजाकर
जगत में घूमना घोड़े को यकसाल
बरस के बाद फिर आएगा खुशहाल
मुबारक काम है अश्वमेध का काम
कृपा ईश्वर करे पावेगा अंजाम
हुई चारों तरफ फूलों की बरखा
मुबारक देने आई कर्म लीखा ।[७]

घोड़े को लव और कुश पकड़ लेते हैं और राम की सारी सेना उनके साथ युद्ध करते हुए हत हो जाती है। स्वयं रामचन्द्र भी युद्धस्थल पर पहुंच जाते हैं और लड़ते-लड़ते मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। दोनों बालक उनके मुकुट और शस्त्र लेकर आश्रम में पहुंच जाते हैं और

६. 'विष्णु प्रताप रामायण' (पाण्डुलिपि) पृ० २७८
७. वही पृ० ६१६

सीता यह सब देखकर तथा राम के मुकुट को पहचान कर विलाप करने लगती है। भगवान् शिव की अमृत वर्षा से राम पुन: अपनी खोयी हुई चेतना प्राप्त करते हैं और तत्पश्चात् वाल्मीकि के आदेशानुसार सीता और बच्चों को लेकर अयोध्या लौट आते हैं।

इसके पश्चात् राजलीला कांड में रामचन्द्र की राज्य-व्यवस्था का वर्णन किया गया है। रामचन्द्र अपने पुत्रों (लव, कुश) और अपने भाइयों के पुत्रों (सुबाहु, जापकेतु, सुशील, पुष्कर, सुचेतन, चित्रांगद आदि) का विवाह रचाते हैं। इधर कौशल्या का देहान्त हो जाता है और उधर रामचन्द्र जी अपना राज्य, अपने तथा अपने भाइयों के बच्चों में बांट देते हैं। इसके पश्चात् रामचन्द्र अपनी पत्नी के साथ कश्मीर मण्डल की यात्रा पर आते हैं और यहां के प्रचलित और प्रसिद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा करते हैं। वैकुण्ठ काण्ड में कवि ने राम की विभूतियों एवं सनातन धर्म की महिमा का गुणगान किया है। अन्त में कवि ने पुन: अनेक लीलाओं तथा भक्तिपूर्ण गीतों से अपनी श्रद्धा के कुसुम अपने आराध्यदेव को अर्पित किये हैं।

प्रस्तुत रामायण पर वाल्मीकि-रामायण का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है परन्तु गम्भीर अध्ययन करने पर यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय नवीन प्रसंगों के चित्रण द्वारा दिया है एवं अनेक नवीन उद्भावनाएं भी की हैं। पण्डित विष्णु कौल प्रथम कश्मीरी रामभक्त कवि हुए हैं जिन पर तुलसी के 'रामचरित मानस' का प्रभाव भी देखने को मिलता है। महाराजा जनक के उपवन में राम और सीता की परस्पर भेंट, सीता स्वयंवर, सीताहरण, राम-रावण युद्ध तथा रावण की पराजय, अंगद-रावण संवाद तथा अन्य अनेक प्रसंगों के चित्रण में 'रामचरित मानस' का प्रभाव देखने को मिलता है।

प्रस्तुत रामायण में मुख्य कथा के साथ असंख्य प्रासंगिक कथाओं की सफल योजना की गयी है जिनका सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व है। राम के जन्म और विवाह से सम्बन्धित कथा, अन्धमुनिशाप, मंथरा द्वारा कैकेयी को बहकाना, रामवनगमन तथा दशरथ मरण, शूर्पनखा निरूपण, अहिल्या-उद्धार, मारीच और जटायु की कथा, वाली वध एवं नल नील तथा अंगद से सम्बन्धित कथा, त्रिजटा स्वप्न, विभीषण का राम से मिलना, सेतुबन्ध, शिवलिंग प्रतिष्ठा, अंगद का दूत बनना, लक्ष्मण मूर्च्छा, मेघनाद युद्ध, अग्नि परीक्षा, सीता त्याग, अश्वमेध यज्ञ तथा कश्मीर मण्डल की तीर्थयात्रा से सम्बन्धित कथा इस रामायण में वर्णित है। इन समस्त कथाओं का कहीं न कहीं पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आधार प्राप्त होता है। कई प्रासंगिक कथाओं के चित्रण में कवि ने मौलिक उद्भावनाएं भी की हैं। लक्ष्मण क्रोध (भरत के ससैन्य चित्रकूट आगमन पर), सीताहरण के अवसर पर अत्यधिक क्रोध से पीड़ित लक्ष्मण की मूर्च्छा का प्रसंग, सेना-प्रशिक्षण, सुमित्रा का स्वप्न, राम के आदेश से लक्ष्मण का मृतप्राय रावण के सम्मुख जाकर ज्ञानोपदेश सुनना तथा राजलीला का वर्णन इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत रामायण का प्रणयन कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य की पृष्ठभूमि पर हुआ है। रामायण का अध्ययन करने के बाद यह बात स्पष्ट होती है कि कवि ने कश्मीर के प्राकृतिक

वैभव का भरपूर प्रयोग इस कलाकृति के सजाने-संवारने के हेतु किया है। प्राकृतिक दृश्यों का अंकन करते समय कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है :—

यम्बरजल प्यालि हेयथ जन गुलिअनारस
हवादा'री छि मटि बर्गे चिनारस
खुशी सर्वन ति शमशादन छि बासान
स्यठाह नदियन ति नहरन हिंज नज़ाकत
हियेे पोशन ति अछि पोशन तरावत
मुअतर आरवल मसवल मुशिकदार
स्थावर जंगमस प्रथ तरफ गुलज़ार
ग्रज़ान फँव्वार जन आवाज़े बुलबुल
चमन अन्दर चमन खुश रंगो बू गुल ।[८]

[नव बसन्त के अवसर पर नरगिस, गुलिअनार के सम्मुख मदिरा का प्याला लिए खड़ी है। चिनार के पत्ते पंखा झुला रहे हैं। 'सरो' वृक्ष और 'शमशाद' की निगाहों में हर्षोल्लास दीख पड़ता है 'हिय' और 'अन्छपोश' पूर्णरूपेण खिले हुए हैं। 'आरवल' और 'मसवल' के फूल सुगन्धी बिखेर रहे हैं समस्त प्रकृति एक खिला हुआ उपवन दीख रही है। बुलबुल पक्षी की ध्वनि में फव्वारे की गरज गूँज रही है और सारा चमन नाना रंगों के फूलों से खिला हुआ है।]

पण्डित विष्णु कौल ने अपने रामायण में लोकभाषा का प्रयोग किया है। वे संस्कृत और फारसी के विद्वान् थे अतः स्वाभाविक है कि दोनों भाषाओं का प्रभाव इस रचना में देखने को मिलता है। लोकमानस में रामभक्ति की प्रतिष्ठा के हेतु उन्होंने समन्वयात्मक भाषा का प्रयोग भी किया है। सर्वसुलभ जन भाषा का एक प्रयोग देखने योग्य है :—

वेचान छुनि भरतजी क्या मंज जामन
बराबर होवतस वेशिरूप रामन
सती सीताय पादन प्यठ परन प्यव
सत्तिच माताय सतकिनि सूय शरणगव
कृपा करि रामयस, तसनिश छु क्या दूर ।[९]

संस्कृत गर्भित कश्मीरी भाषा का रूप हमें इस महाकाव्य में वहां देखने को मिलता है जहां कवि जीव, ब्रह्म, माया, जगत, भक्ति, ज्ञान एवं मोक्ष पर विचार करते हैं। अपने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति के हेतु एवं भक्ति का निरूपण करते समय प्रायः उनकी भाषा संस्कृत गर्भित हो गई है :—

---

८. 'विष्णु प्रताप रामायण' (पाण्डुलिपि) पृ० ६८
९. वही पृ० ५०९

वुछुन गछि सत्त, विचारून सत्त सनातन
सत्तकि आचार धर्मस बुग्रध छि वातान
ज्ञानुक गाश यस आसे बराबर
परमात्मन तमिस बासे चराचर
विचारून ओ३म् तत्सत रूप हावे
असत् जीवन अधूगच् वातिनावे।[१०]

फारसी भाषा के महान् पण्डित होने के कारण उन्होंने कहीं-कहीं फारसी मिश्रित कश्मीरी भाषा का प्रयोग भी किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :—

गुलो गुलज़ार गुलशन शालिमारान
सदाए राम राम आवशारन
हंस सरखाव कम आवाज़ त्रावान
अजायब रक्स क्या ताऊस हावान।[११]

कहीं-कहीं पण्डित जी ने उर्दू-हिन्दी मिश्रित भाषा का भी प्रयोग किया है। दंडक वन चित्रण, भरत द्वारा राम की वन्दना, सीता मन्दोदरी मिलन, अहिल्या गौतम प्रसंग, रावण-मृत्यु तथा अन्य अनेक प्रसंगों का वर्णन कवि ने उर्दू-हिन्दी मिश्रित (खड़ी बोली) भाषा में किया है। दंडक-वन का यह वर्णन देखने योग्य है :—

दण्डक बन खास कर बैकुण्ठ का धाम
परम आनन्दमय लक्ष्मण सियाराम
कभी गुलशन गुलिस्ताँ में उछलते
कभी बागो नयिस्ताँ में टहलते
कभी फूलों को सीता तोड़ लेती
कभी नसरीं को बाहम जोड़ लेती।[१२]

पण्डित जी पहले एक सच्चे भक्त थे और फिर एक सफल कवि। उनके भक्त-हृदय की सच्ची अभिव्यक्ति प्रस्तुत रामायण के द्वारा हुई है। प्रत्येक काण्ड में अनेक लीलाएं, भजन एवं भक्तिपरक गीत लिखकर कवि ने राम को विष्णु का रूप प्रदान किया है और जीव और ब्रह्म के परस्पर सम्बन्ध के द्वारा अपनी दीन-हीन दशा का वर्णन करके राम की दया और अनुग्रह के हेतु सच्चे मन से भक्ति की है। उन्होंने दास्य-भाव की भक्ति को प्रमुखता दी है। राम नाम महात्म्य, नाम स्मरण, सत्संग, इष्ट की कृपा एवं अनुग्रह ही उनकी भक्ति के मूलाधार हैं :—

---

१०. 'विष्णु प्रताप रामायण' (पाण्डुलिपि) पृ० ८
११. वही पृ० ५५४
१२. वही पृ० ६५

कल जुगस अन्दर छु तारवुन राम
मदस मोहस त क्रूधस मारवुन राम ।[13]

[कलियुग में संसार सागर को पार करने वाला राम है। मनुष्य के मद, मोह तथा क्रोध आदि को नष्ट करने वाला राम है।]
इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि कश्मीरी भाषा के राम काव्य के इतिहास में इस रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इस रामायण की पाण्डुलिपि फारसी लिपि में लिखी हुई है और स्वयं कवि ने अपने हाथ से लिखी है। उन दिनों पण्डित जी ने इस महाकाव्य को लिपिबद्ध करने के लिए सबसे बढ़िया कागज़ और स्याही को प्रयोग में लाया है। काली चमकदार स्याही से कवि ने इस महाकाव्य को लिखा है। प्रत्येक चौपाई के मध्य उन्होंने 'ओ३म्' शब्द लिखा है। इस शब्द को उन्होंने लाल रंग की स्याही से लिखा है। इस प्रकार रामायण का प्रत्येक पृष्ठ अत्यन्त आकर्षक एवं सुन्दर बन पड़ा है। उस समय के प्रसिद्ध डोगरा शासक महाराजा प्रतापसिंह के प्रति आदर और सम्मान व्यक्त करने के हेतु कवि ने प्रस्तुत महाकाव्य का नाम 'विष्णु प्रताप रामायण' रखा है। प्रथम शब्द 'विष्णु' स्वयं कवि के नाम (विष्णु कौल) का प्रथम शब्द है। यह महाकाव्य अभी भी अप्रकाशित अवस्था में स्वर्गीय कवि के सुपुत्र के पास सुरक्षित है। आवश्यकता इस बात की है कि इसके प्रकाशन की तुरन्त व्यवस्था की जाए ताकि इस कलाकृति से समस्त सहृदय पाठक परिचित हों। सम्भव है अन्य अनेक तथ्य प्रकाश में आ जाएं और कश्मीरी कविता को एक नई दिशा प्राप्त हो।



१३. 'विष्णु प्रताप रामायण' (पाण्डुलिपि) पृ० २०

हास्य - व्यंग्य

क्या करें हम—जब मित्र झांसा दें

—डॉ० संसार चन्द्र

किसी शायर ने अपने किसी मेहरबान मित्र को लक्ष्य कर क्या खूब शे'र पढ़ा है :—

तेरे कूचा की बात है कुछ और
हर गली आसमां नहीं होती

शायर साहिब सचमुच किस्मत के धनी हैं, जो यार के कूचा की दिलफरेब फिज़ा पर इस कदर लट्टू हैं परन्तु इनकी अक्ल की दाद देनी पड़ती है कि उन्हें इस बात का भी पूरा एहसास है कि दुनियां में एक सच्चे मित्र का मिलना कोई साधारण घटना नहीं है। तभी तो इन्होंने फरमाया है—"हर गली आसमां नहीं होती"। वास्तव में एक सच्चा मित्र किसी पारसमणि अथवा कोहेनूर हीरे की तरह मुश्किल से मिलता है। जिस प्रकार प्रत्येक वन में चन्दन, प्रत्येक सरोवर में कमल और प्रत्येक सीप में मोती का जन्म जरूरी नहीं होता, उसी तरह सच्चा मित्र भी लाखों में कोई एक ही होता है। यूं तो दुनिया में दोस्ती का दम भरने वाले नाम-निहाद मित्रों की कोई कमी नहीं होती, जिनकी तुलना सहज ही बरसाती मेंढकों से की जा सकती है, जो अपनी मधुर ध्वनि से आपकी शान में ऐसे-ऐसे अखण्ड संकीर्तनों का आयोजन करते हैं कि बेचारी कोयल की वाणी पर भी दफा एक सौ चवालीस नाफ़िज़ हो जाती है। इनका संगीत, शास्त्रीय संगीत से भी, ऊंचे पाये का होता है। इसीलिये इसका रस लेने के लिये शुरू-शुरू में आपको अपने कानों को इसका अभ्यस्त करना पड़ता है परन्तु ज्यों ही आप इस साधना में कामयाब हो जाते हैं और इस दैवी संगीत का जादू आपके सिर चढ़ कर बोलने लगता है, इन दादुर मित्रों की संगीत-मण्डली अगली बरसात में पुनः आने का वायदा देकर कब की रुख्सत हो चुकी होती है। उस समय इन मेहरबान मित्रों की तलाश में आप क्या नहीं करते। कहां-कहां प्यादे नहीं दौड़ाते परन्तु इन महानुभावों के दर्शन तो दूर आप इनकी चरणरज तक को तरस जाते हैं :—

इतनी बदगुमानी के कोई चूम न ले
दामन से नक्शे-पा भी मिटाते चले गये

मैं सोचता हूं मित्र सच्चा हो या बनावटी, असली हो या नकली मित्र आखिर मित्र है। उसकी मेंढक से तुलना जरूर किसी हद तक एक स्वीकृत साहित्यिक डेकोरम को ठेस पहुँचाती होगी। सम्भवतः इसीलिये हमारे प्राचीन पंडितों ने सुमित्र की तुलना नारियल और कुमित्र की बेर से की है। संस्कृत में मित्र अथवा सुमित्र के लिये "सुहृत्" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका सम्बन्ध हृदय से है। इसीलिये इस तुलना में भी हृदय को ही निकष रखा गया है। नारियल और बेर क्रमशः कोमलता और कठोरता के प्रतीक हैं, जिनसे दोनों प्रकार के मित्रों के हृदय की कोमलता एवं कठोरता की थाह ली गई है।

जब से जमाने की हवा बदली है और मित्रों ने नित नये झांसे देने शुरू किये हैं मित्र की परिभाषा तथा उसके उपमानों में आश्चर्यजनक विकास हुआ है। प्राचीनकाल में मित्र को "अमृत फल" कहा जाता था। जब से कलियुग महाराज के चरण पड़े हैं, मित्र को अमृत पद प्रदान करने की नीति को गहरी ठेस पहुंची है। अमृत तो कलियुग के दर्शन करते ही सीधा स्वर्ग पहुँच गया। हां फल जरूर शेष रह गया है। फल भी वह सदाबहारी फल नहीं, केवल मौसमी फल। इसीलिये मौसम बहार में फूलों पर अलिपुंज की तरह तथाकथित मित्र मण्डल भी आपको घेर लेता है परन्तु खिजां का दौर आने पर जिस प्रकार पत्ते पेड़ों से रूठ कर भाग निकलते हैं, यार लोग भी अज्ञातवास का कोई न कोई बहाना ढूंढ कर रफू-चक्कर हो जाते हैं।

प्राचीन काल में मित्र एक व्यक्ति नहीं संस्था समझा जाता था। मैत्री की रस्म शास्त्रीय रीति से अदा की जाती थी। मित्र आपस में पगड़ियां बदल लेते थे और जीवन भर एक दूसरे का साथ देने का प्रण करते थे। सिर पर वफाओं की गठरी बांध कर दोस्ती का दामन पकड़ते थे। जहां एक दूसरे का पसीना गिरता लहू बहाते थे। अब तो मित्रों ने नया चोला धारण कर लिया है। इन मित्रों को फसली मित्र कहते हैं। कई लोग व्यंग्य से इनको **फसली बटेरे** कहते हैं। अंग्रेज़ी में इनके लिये फेयर वैदर फ्रैंड सम्बोधन चलता है। इन्होंने प्राचीन मजनूं परम्परा की धज्जियां उड़ा दी हैं। वैसे मजनूं तो अब भी मिलते हैं, मगर नये माडल के। मेरा मतलब है खून देने वाले मजनुओं के स्थान पर दूध पीने वाले मजनूं मिलते हैं। नित नया मित्र बनाना इनकी हॉबी है। आपके पास बीस तीस साल पुराना कोट, छड़ी, पुस्तक आदि कुछ न कुछ तो जरूर होगा और मुझे विश्वास है कि आपने उसे यथाशक्ति संभाल कर भी रखा होगा, मगर इतना पुराना मित्र आपको कभी चिराग लेकर ढूंढने पर भी नहीं मिलेगा। इधर नये मित्रों ने तो इतिहास बदल दिये हैं। इनके करतब देखकर आप दंग रह जाएंगे। ये यार लोग वैसे तो हरफन मौला हैं मगर एक विशेष कला में तो यह पूरे विशेषज्ञ घोषित हो चुके हैं। यह कला है "मित्रों को झांसे देने की कला"। पता नहीं किस कालिज से इन्होंने झांसे देने की ट्रेनिंग हासिल की है कि इनका कोई वार खाली नहीं जाता। इस पर लुत्फ यह है कि झांसा देकर मक्खन में से बाल की तरह इस सफाई से निकल जायेंगे कि आप मुंह ताकते रह जायेंगे।

इन झांसेबाज मित्रों की दोस्ती बड़ी रहस्यपूर्ण होती है। इनका आगाज़ और अंजाम दोनों नाटकीय ढंग से होते हैं। ये सज्जन एक हाथ में फूल और दूसरे में कांटे लेकर आते हैं। हमारी बदकिस्मती से फूल जल्दी कुम्हला जाते हैं और कांटे फौरन अपना काम शुरू कर देते हैं। वैसे भी फूल और कांटे में दोस्ती और दुश्मनी की तरह बहुत फासला होता है। वास्तव में मित्र रूपी इन कांटों की हकीकत बड़ी ही विचित्र है। ये हमारी विवशता के बलबूते पर जीते हैं। हमारी लाचारी, हमारी सीमाएं इनकी खुराक हैं। तभी तो हम इन्हें बार-बार सहलाते हैं। इनकी हर चुभन का स्वागत करते हैं। हर खरौंच को वरदान समझते हैं। ये जब कभी हमारे दामन से उलझते हैं तो दोष दामन को ही देना पड़ता है। आखिर बेचारे कांटे का क्या दोष। आप खुशनसीब हैं यदि आपको कांटों से कोई सरोकार नहीं। मेरी मत पूछिये, छलनी बैठा हूं, बल्कि यूं समझिये कि कांटों की शरशय्या पर दक्षिणायण के दिन गिन रहा हूँ। इन कांटों से बचने के लिये बहुतेरे हाथ पैर मारता हूं परन्तु परिस्थिति ही शिखण्डी का रूप धारण कर लेती है। न खंजर उठता है न तलवार और हारे हुए जुआरी की तरह सिवाय सब्र के कोई चारा नहीं होता। मेरी नाजुक हालत देखकर ही किसी शाइर ने शायद यह शे'र पढ़ा है :—

गुलशन परस्त हूँ मुझे गुल ही नहीं अजीज।
कांटों से भी निबाह किये जा रहा हूं मैं॥

यहां तक लेखक की ज़ात का प्रश्न है वह तो दोस्ती का एक क्रॉनिक मरीज है। अपने स्कूल-जीवन में ही दोस्तों पर फिदा था। उन दिनों एक वृद्ध पंडित जी हितोपदेश पढ़ाया करते थे। वे मित्रलाभ की कहानियां बड़ा रस लेकर समझाया करते थे। वे मित्रों के फायदे तो बताते रहे परन्तु उन्होंने कभी तस्वीर का दूसरा पहलू नहीं दिखाया कि मित्र झांसे भी देते हैं। चुनांचे हम मित्र बनाने के नेक काम में सिर धड़ की बाजी लगाकर जुट गये। दो चार नहीं दर्जनों मित्र बना डाले। अपनी क्लास के श्याममोहन से मेरी गहरी छनती थी। यद्यपि उसकी आकृति सुन्दर नहीं थी परन्तु उसकी आवाज में एक विशेष प्रकार का लोच था। मूड में आकर जब वह कोई फिल्मी धुन छेड़ता था तो सुनने वाले मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। सहगल के गीत इस अन्दाज से गाता था मानो सहगल की रूह उसमें परवाज़ कर गई हो। एक एक दिन मेरी जो शामत आई तो मैं उसे कह बैठा, "भाई श्याम, तुम फिल्म कम्पनी में क्यों नहीं चले जाते?" फिर क्या था उसके दिमाग पर ऐसा भूत सवार हुआ कि मुझे भी अपना हमसफर बनाने के लिये तरह-तरह के झांसे देने लगा। उसने अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से मुझे यकीन दिला दिया कि मेरी पर्सनेलिटी बुरी नहीं है और मैं भी एक कामयाब हीरो बन सकता हूं। इसके अतिरिक्त वह बम्बई के एक नामी फिल्म-प्रोड्यूसर का रिश्तेदार है। इसलिये दोनों का काम बन जायेगा और फिर जिन्दगी भर ऐश··· । पता नहीं मुझे अपने बारे में इतनी भारी गलतफहमी क्यों हो गई कि मैं श्याममोहन के झांसे में आ गया और हम दोनों दोस्त दिन-रात बम्बई भाग जाने के मनसूबे बनाने लगे। मेरे मित्र ने चन्द दिनों

में ही मुझे घर से रुपया उड़ाने की पूरी ट्रेनिंग दे दी। एक दिन भाग्य को ऐसा मंजूर हुआ कि पिता जी के एक हज़ार रुपये मेरे हत्थे चढ़ गये और हम दोनों बम्बई के दो टिकट खरीद कर गाड़ी पर सवार हो गये। दिल्ली पहुँच कर गाड़ी बदलनी थी इसलिये वेटिंग रूम में नहा-धो कर आगे चलने का फैसला हुआ। मैंने कैश का बैग मित्र को दिया और बाथरूम में जा घुसा। नहा-धोकर जब बाहर निकला तो मित्र महोदय गायब थे। घंटा, दो घंटे, चार घंटे प्रतीक्षा की पर मित्रवर तो कब के बम्बई रवाना हो चुके थे। कोट का जेब देखा तो केवल दस आने के पैसे थे। हां बम्बई का टिकट जरूर जेब में सुरक्षित था। मैंने समझ लिया कि चोरों पर मोर पड़ गये हैं। खैर एक तरकीब दिमाग में लड़ गई। तत्काल बम्बई का टिकट वापिस करके चव्वन रुपये हासिल कर लिये और जम्मू की गाड़ी पकड़ कर घर पहुंच गया। मित्र के झांसे ने किस सफाई से घर के बुद्धू घर पहुंचा दिये।

मित्र के झांसे का एक ताज़ा वाक्या भी सुन लीजिए। यह मित्रवर मेरे दफतर में ही काम करते हैं। नाम इनका सूर्यकान्त है परन्तु दफतर के बाबू मज़ाक में इन्हें छुरी-कांटा कहते हैं। वैसे इस मित्र को छुरी कांटा कहना उसकी इन्सल्ट करना है। यह श्रीमान तो वास्तव में जूते के कील हैं जो रबरदार सोल में सर ताने खड़े हैं और जिनकी सरकोबी मुझसे तो क्या शहर-भर के नामी-गरामी मोचियों से भी सम्भव नहीं। ऐसे जालिम कील का एक घाव हो तो बताऊं। खैर आप सुनने को बेताब हैं तो सुनिये :—

यह मित्रवर मेरे साथ काफी बेतकल्लुफ हैं। शायद इसीलिये मुझे झांसा देने में संकोच नहीं करते। पिछले साल की बात है मुझे तरक्की दिलाने का चकमा देने लगे। जब मैंने निराश होकर कहा कि मैं कौन से तीन तेरह में हूं, तो कहने लगे कि देखो जमाना किधर जा रहा है और तुम सोलहवीं सदी में जी रहे हो। न ख़ुद खाते हो, न किसी को खिलाते हो। मेरी मानो तो राय साहिब की एक बड़ी दावत कर दो। वह तुम्हारा सब काम फिट करा देंगे। मैंने कहा दावत का कोई मौका-महल तो होना चाहिए। कहने लगे तुम तो बिल्कुल गंवार हो। अरे अपने बर्थडे से डरते हो तो मैरेज एनीवर्सरी मना डालो। मतलब तो राय साहिब को बुलाने से है। उनके साथ चार-पांच यार-दोस्त, बस मोटल में इन्तजाम कर दो। कम खर्च बाला-नशीन और रंग भी गहरा चढ़े। मरता क्या न करता। लाचार मित्रवर के झांसे में फंसना पड़ा और पार्टी का ऐलान कर दिया। फिर क्या था हमारे धूर्त मित्र ने सैक्शन के दूसरे अफसरों में भी ढिंढोरा पीट दिया कि मैं बर्थडे सैलीब्रेट कर रहा हूं। अब मेरे लिये मुंह छिपाना मुश्किल हो गया। खैर दिल पर पत्थर रखकर पूरे दो दर्जन मेहमानों को फीस्ट देनी पड़ी। कपटी मित्र चौधरी बनकर आर्डर देने लगे और मुझे पूरे चार सौ रुपये की चपत लग गई। इस कमर-तोड़ पार्टी का आयोजन किये अब पूरा साल गुजर चुका है और हम निहायत बेसब्री से तरक्की का इन्तजार कर रहे हैं। देखते हैं, कब आर्डर निकलता है।



पहचान

कांगड़ी कविता में आधुनिक भावबोध

—शशिरानी शर्मा

कांगड़ी कविता हिमाचली पहाड़ी साहित्य में प्रमुख स्थान रखती है। हिमाचली पहाड़ी साहित्य का संकल्प और विकास आधुनिक काल की घटना है। सन् १९४७ से कुछ समय पूर्व भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में साहित्यिक प्रतिभा वाले नेताओं और स्वतंत्रता सेनानियों ने अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषा के द्वारा जनता को स्वतंत्रता की दिशा में ले जाने के लिये कविता और नाटक लिखे थे। उसी परम्परा के अनुसार कांगड़ा क्षेत्र में पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम की कांगड़ी कविताएं सन् १९३० से प्रसिद्ध होने लगी थीं। बाबा कांशीराम डाडासीबा के रहने वाले थे जोकि चिन्तपूरनी क्षेत्र में वहां से लगभग दस-बारह किलोमीटर पौंगडैम की ओर है।

हरिपुर गुलेर राजा के अपने पोथीखाने में कुछ ऐसी पुस्तकों के हस्तलेख उपलब्ध हैं जो ब्रजभाषा और कांगड़ी भाषा के मिश्रित रूप में है। उस राजवंश के अस्तव्यस्त होने के बाद उनकी संभाल और सम्पादन नहीं हो सका है। रिखिराम डोगरा की कांगड़ी रामायण का हस्तलेख भी नहीं मिल पाया है। राधा स्वामी सम्प्रदाय के प्रभाव से कांगड़ी में कुछ सन्तवाणी के नमूने की छुटपुट कविता भी हुई। वह भी लोगों के कण्ठ में है। उसका लिखित और प्रकाशित रूप सामने नहीं आया है।

हमीरपुर के निवासी श्री रूपसिंह फूल (एडवोकेट) ने सन् १९४७ से पहले लाहौर के साहित्यिक समारोहों की देखादेखी कांगड़ी में छुटपुट मुक्तक कविताएं लिखनी और बोलनी आरम्भ की थीं। उसे अभी रूपसिंह फूल ने प्रकाशित नहीं करवाया है।

सन् १९४७ के पश्चात् जब स्वतन्त्रता के वातावरण में सांस्कृतिक चेतना का फिर से उत्थान होने लगा तो स्कूलों के कुछ अध्यापक स्कूलों के प्रोग्रामों के लिये कांगड़ी में छुटपुट कविताएं रचने और बच्चों से गवाने लगे। उनके वे प्रयत्न लोक कविताओं के स्तर के थे,

इसलिये उनकी वे लोक-कविताएं लोकगीतों के अथाह सागर में ही डूब गईं। आकाशवाणी जालन्धर से प्रसारित "पर्वत की गूंज" प्रोग्राम के लिये कुछ कांगड़ी कवि कविता लिखकर लोकगीत की तरह गाते और गवाते रहे। इस प्रकार के छुटपुट प्रयत्न कांगड़ी कविता और कांगड़ी लोकगीत को लोकप्रिय बनाते रहे।

नवम्बर १९६६ में कांगड़ा को हिमाचल के साथ मिलाया गया, तब से अब तक कांगड़ी कविता को एक स्पष्ट हिमाचली पहाड़ी रूप मिला। अब कांगड़ी के निम्नलिखित कवि प्रसिद्ध हैं :—श्री भगतराम मुसाफर, श्री डी. एन. कौल, श्री पीयूष गुलेरी, श्रीमती कमला वर्मा, श्रीमती सरोज पराशर, श्री शेष अवस्थी, कुमारी रक्षा, श्री रूप शर्मा निर्दोष, श्री अश्वनी गर्ग, श्री ओंकार भारद्वाज, श्री सागर पालमपुरी, श्री गौतम व्यथित, श्री प्रत्यूष गुलेरी, श्री प्रेम भारद्वाज, श्री पवनेन्द्र कुमार आदि-आदि। इनमें गुलेरी श्री पीयूष और श्री प्रत्यूष दोनों सगे भाई हैं, इन दोनों की पुस्तकें छप चुकी हैं। श्री व्यथित की दो पुस्तकें छपी हैं, श्री शेष अवस्थी और कुमारी रक्षा की भी पुस्तकें छपी हैं। शेष कवियों की कविताएं कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

इन सभी कवियों की कविताओं के अलग-अलग स्तर हैं। किसी कवि की कविता लोकगीत की कोटि की है तो किसी में हिन्दी कविता का रंग है परन्तु इतना अवश्य है कि उनमें आधुनिक जीवन की जीती जागती समस्याओं का उल्लेख है। अधिकांश कविताएं मेलों और त्योहारों पर गाए जाने के लिये लिखी गई हैं, अतः उनमें स्थायी ढंग के भावों की अभिव्यक्ति को चंचल बना कर दिखाया गया है। यदि ये कवि पुस्तक में छापने के लिये लिखते तो इनकी कविताओं का रंग और प्रभाव और प्रकार का होता। फिर भी इन कवियों की कविताओं ने श्रोताओं के मन में कांगड़ी-पहाड़ी भाषा के लिये एक मोह और प्यार उत्पन्न किया है इसलिये इन कविताओं की देन को नकारा नहीं जा सकता। कुछ कविताओं के उदाहरण यहां प्रस्तुत किये जाते हैं :—

'फूल' वी आदमी तां अच्छा था,
इस जो नैणां दा भोग लई बैठा।

'रूपसिंह फूल' मूलतः उर्दू भाषा के शायर हैं। उर्दू कविता भाव प्रधान होती है। अतः 'फूल' की कांगड़ी कविता में उर्दू के रंग की भावप्रवणता है।

श्री पीयूष गुलेरी कांगड़ी कविता में ध्वन्यात्मक नाद सौन्दर्य और ठेठ ग्रामीण शब्दों के काव्यात्मक प्रयोग के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी अधिकांश कविताएं प्रकृति और नारी सौन्दर्य के मोहक चित्र हैं. परन्तु कहीं-कहीं उनके काव्य की भावधारा अन्तर्मुखी होकर भी प्रवाहित हुई है :—

पीड़ा खुसिया बेदन मीहणे,
सोती साती बुझकें पाए।
खवरें कें अज्ज कैरू पेंडू,
मेकी छैल बझोण लगे।

जीवन के सुख-दु:खों और यादों को समेट कर अपने अनुभवों की पोटली में डाल कर अच्छे बुरे सभी को छैल समझने लगना मानसिक दृढ़ता की निशानी है। श्री गौतम व्यथित की कांगड़ी कविता लोक जीवन के प्रभाव से ओतप्रोत है और उसमें स्मृतियों की टीस और संसार के अनुभवों का चित्रण भी है :—

छोटा बड्डा खेहला दा,
हर पासे छु - छुहाट
लुक - लुकाडा अडी चूं
घटा दा जीणे ते
माहणुए दा वस्वास।

श्री मनोहर सागर पालमपुरी की कांगड़ी कविता परिस्थिति चित्रण के लिये प्रसिद्ध है। लोकगीत शैली में लिखी उनकी कांगड़ी कविताएं एक पूरे दृश्य की झांकी होती हैं, परन्तु ग़ज़ल शैली में लिखी कविता मूक भावनाओं की वाणी है :—

मैं अज्ज वी तोपा ना सागर गुआचेओ सुपने,
कोई दिया वी इन्हां न्हेरेआं नी मिटाई सकेआ।

इस तरह हम देखते हैं कि कांगड़ी कविता में आधुनिक भावबोध का चित्रण अब होने लगा है।



भारत

यदि मुझसे पूछा जाय कि किस आकाश के नीचे मानव-मस्तिष्क ने अपने मुख्यतम गुणों का विकास किया, जीवन की सबसे महत्वपूर्ण समस्या पर सबसे अधिक गहराई के साथ सोच-विचार किया और उनमें से कुछ ऐसे समाचार ढूँढ निकाले, जिनकी ओर उन्हें भी ध्यान देना चाहिए जिन्होंने प्लेटो और कान्ट का अध्ययन किया है, तो मैं भारतवर्ष की ओर संकेत करूँगा। और यदि मैं अपने आपसे पूँछू कि किस साहित्य का आश्रय लेकर हम यूरोपीय, जो कि बहुत कुछ केवल यूनानियों, रोमनों और एक सेमेटिक जाति के यानी यहूदियों के विचार के साथ-साथ पले हों, वह सुधारक वस्तु प्राप्त कर सकते हैं, जिनकी कि हमें अपने जीवन को अधिक पूर्ण, अधिक विस्तृत और अधिक व्यापक बनाने के लिए आवश्यकता है, न केवल इस जीवन के लिए अपितु एकदम बदले हुए और अनंत जीवन के लिए, तो मैं फिर भारतवर्ष की ओर संकेत करूँगा।

—मैक्समूलर

कहानी

अर्थ कामना

—से० रा० यात्री

दरवाज़ा भीतर से बन्द नहीं था—शायद यों ही उढ़का दिया गया था। मैं दरवाज़े को धकियाता अन्दर घुसा तो अन्धेरे की वजह से पहले कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ा। सीलिंग फैन फड़-फड़ करता हुआ पूरी रफ्तार पर घूम रहा था—शायद रेगुलेटर की गड़बड़ी के कारण पंखे की गति नियंत्रित नहीं थी। दीवारों पर टंगे कपड़े और केलैण्डर भी फरफरा रहे थे। कुल मिलाकर पूरे कमरे में अन्धड़ जैसी हालत थी।

मुझे देखकर निहालचन्द जी बिस्तर पर उठ कर बैठ गये। कोने में पड़ी हुई कुर्सी खींचकर मैं उनकी चारपाई के निकट बैठ गया। मेरे नज़दीक पहुंचते ही वह मेरा घुटना पकड़ कर रोने लगे। मैं इस आकस्मिक रोदन से घबरा उठा। पता नहीं इस बीच क्या कुछ अघट घट गया हो, यों मैं बीस-बाइस दिन पहले तो उनसे मिलकर गया ही था लेकिन कुछ भी घटित होने के लिए वक्त का तो कोई मतलब भी नहीं है। वे एक उम्रदराज़ आदमी थे—जिन्दगी का लम्बा सफर तय करते हुए न जाने क्या-क्या होनी अनहोनी झेल चुके थे—मामूली हादसे पर तो अधीर होकर रो भी नहीं सकते थे। फिर मैंने उन्हें ऐसा हलकान होते शायद ही कभी देखा हो। मैंने उन्हें गौर से देखा—देखने पर वह असाध्य रोगी भी नहीं लगे। हां उनके एक पैर में पट्टी जरूर बंधी हुई थी—मुझे यह बात पहले से मालूम भी थी कि उनके पैर में छाजन है और उससे लगातार पानी रिसता रहता है। उन्हें दिलासा देने के लिए यकायक मुझे उपयुक्त शब्द भी नहीं सूझे।

दो-तीन मिनट तक बेज़ार होकर रोने के बाद निहालचन्द जी ने अपने गालों पर बहते आंसू पोंछ लिए और घर-घर करती बलगमी आवाज़ में बोले—"तुसीं कैसे हो पुत्तर—इस दफ़ा बहुत देर कर दी।" उनकी इस उत्सुकता का शायद गहरा अर्थ रहा हो लेकिन मैंने उनके वाक्य में निहित सम्भावना को काटने की भरपूर कोशिश की "माता जी दिखाई नहीं पड़ रही हैं—कहीं बाहर गई हैं क्या ?"

"आती होगी बस—बाजार तक गई है सौदा सुलफ खरीदने ।" अपनी सूचना समाप्त करके वह एकदम चुप होकर बैठ गये । उन्हें उम्मीद थी कि मैं उनके लिए कोई बहुत महत्वपूर्ण सन्देश लेकर आया हूँ । उनका बेटा जो कभी मेरा सहपाठी था दूर परदेस में रहता है । पिछले अनेक वर्षों से घर नहीं आया । वह वहां रहकर भी बाकायदा कोई नौकरी या व्यवसाय नहीं करता । अललटाप और मस्त तबीयत आदमी है । जी हुआ तो कुछ काम धाम कर लिया वर्ना वक्त फोड़ते हुए यहां वहां मटरगश्ती की । वह अजीब सनकी स्वभाव का आदमी है । यही नहीं अपने और दूसरे के प्रति समान रूप से कठोर है । जितने समय तक घर परिवार में रहने की विवशता थी, रहा और बाद में सबसे पल्ला छुड़ाकर भाग खड़ा हुआ । उसने कभी मां-बाप को एक दूसरे के प्रति सही ढंग से सहअस्तित्व निभाते नहीं देखा था । रोज़-रोज़ की मार-पीट, कलह और फ़जीहत ने उसे इतनी दूर उठाकर फैंक दिया कि अब वह इधर आने का नाम भी नहीं लेता । इन दोनों प्राणियों से हजार-डेढ़ हजार मील दूर बैठ कर भी वह वस्तुस्थिति की कटुताओं को भूला नहीं है । माता-पिता की पारस्परिक नासमझी को किसी ममत्व की भावना में लपेटना उसके लिए आज भी सम्भव नहीं है । वह कभी-कभी बहुत संयम तथा नियन्त्रण से लिखे गये पत्र मेरे नाम भेजता है लेकिन यह भी आवश्यक नहीं है कि अपने माता-पिता के सम्बन्ध में हमेशा और हर पत्र में कोई जानकारी चाहे । हाँ साल में इतना जरूर करता है कि पत्रों के साथ दोचार सौ के ड्राफ्ट मेरे नाम लिख देता है और विनोद की शैली में यह ताकीद भी करना नहीं भूलता 'दोनों को अलग-अलग वक्त पर जाकर इस कौशल के साथ पैसा देना कि वे यह न भांप पायें कि तुमने एक के अलावा दूसरे को भी कुछ दिया है ।'

मुझे अत्यन्त अनासक्त भाव से काम करना पड़ता है । आप खुद ही सोच सकते हैं कि किसी राशि में से आपको एक भी पैसा न मिलने वाला हो और उसे दो शंकालु वृत्ति के आदमियों के बीच में बांटने के लिए 'गुप्तदान' वाला धैर्य साधना पड़े तो कितना संयम दरकार होता है ।

यह भी एक विचित्र संयोग है कि मैं जितनी दफ़ा उनके पास गया हूं दोनों कभी एक साथ मुझे नहीं मिले और अब दोनों की हालत यह हो गई है कि मुझे देखते ही चौकन्ने होकर प्रत्याशाओं में डूब जाते हैं । मुझे ऐसा भी महसूस होता है कि सहज बुद्धि और जीवन के लम्बे अनुभवों से दोनों यह जान गये हैं कि मैं दोनों को अलग-अलग रुपये देता हूं । लगता है इस आकस्मिक राहत वाली सम्भावना को लेकर दोनों के बीच एक मूक समझौता हो चुका है ।

शुरू-शुरू में अपने मित्र द्वारा भेजी हुई इस धनराशि को लेकर मुझे बहुत सात्विक ढंग की प्रसन्नता होती थी । मैं सोचता था कि मैं दो लोगों को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता प्रदान करके न केवल अपना फर्ज़ निभा रहा हूं बल्कि आगे के लिए पुण्य अर्जन भी कर रहा हूं । मुझे अपने माता-पिता को इस तरह रुपये पैसे देने की सुविधा कभी नहीं मिली ।

उनका रोमांचित करने वाला आशीर्वाद भी कभी नहीं मिला। इन दो बुजुर्गों की दुआएं मुझे वर्षों तक काफी उत्साहित करती रही हैं लेकिन बाद में जाकर मेरा उत्साह ठंडा पड़ने लगा। जब कभी उसका 'ड्राफ्ट' मेरे नाम आता है—मैं स्वयं वहुत तंगी में होता हूं—सोचने लगता हूं लाओ इस बार कुछ अपना ही भला कर लो—वह कौन पूछने आ रहा है मगर इस गर्हित मानसिकता को जोर-जबरदस्ती ठेलता रहता हूं—'आदमी को इतने नीचे नहीं जाना चाहिए'।

निहाल चन्द जी एक कपड़े की कोठी में वहुत सालों से मुनीम हैं और कम से कम तीन सौ रुपया महीना तनख्वाह पाते हैं। मुझे यह भी पता चल गया है कि बुढ़िया को घर चलाने तक का खर्च बगैर हाय तौबा किये नहीं देते बल्कि लखपति होने की लालसा में अपनी पगार का अधिकांश सट्टे में लगा देते हैं। उन दोनों में इसी प्रश्न को लेकर अक्सर खांव-खांव मची रहती है। मैं जब तब रुपया देने उनके पास जाता अवश्य हूं मगर अब दोनों मुझे जोंक जैसे लगते हैं जो सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष के—परदेस में बैठे—युवक का खून पीते रहते हैं। उन अनिश्चित स्थितियों में भटकते, जूझते युवक के वर्तमान से जब यह रुपया छिन कर इस कस्बे में आता है तो मुझे क्रोध आने लगता है। यह ठीक है कि उन दोनों ने उसे पैदा किया है—उसका पालन-पोषण भी किसी सीमा तक किया है मगर यह कहां का न्याय है कि आपस में मिलकर शान्ति से रह तक नहीं सकते। इन दोनों की स्थितियों से ऊब कर पहले वह परदेसी बना था और इतने सालों में तो अब पूर्ण निर्वासित हो चुका है।

उस अन्धेरे कमरे में मैं निहालचन्द जी की कराहें सुनता बैठा था। हालाँकि उन्होंने मुझसे अब तक एक वाक्य के अलावा और कुछ नहीं कहा था पर उनकी धड़कनों से फूटती उम्मीदें मुझे अपने आस-पास मंडराती लग रही थीं। मुझे अपने मित्र का पत्र कल ही मिला था और उसकी पंक्तियां याद आ रही थीं—'उन लोगों के बारे में लिखना। मैं तुम्हारे नाम एक चैक या ड्राफ्ट भेजने की जल्दी ही कोशिश करूंगा।' मित्र का पत्र पाये बगैर अपनी मंशा से उन दोनों के पास जाना मेरे लिए बहुत ही कम सम्भव हो पाता था। उनकी आंखों में मुझे देखकर जो आह्लाद जागता था वह निश्चय ही मेरे प्रति नहीं होता था। उनकी आंखों में चमक पैदा करने वाला तो वह रुपया होता था जिसे उन तक ले जाने वाला मैं मात्र माध्यम था। दुःखों और उम्र की ऊब से जूझती आंखों में निराशा का अतिरिक्त भाव जगाना मुझे जघन्य कृत्य लगता था—और साथ ही यह भी विडम्बना थी कि विना मित्र की ओर से कुछ पाये मैं सिर्फ एक असमर्थ माध्यम भर था।

मैंने निहालचन्द जी का चेहरा देखा—अब तक मेरी आंखें अंधेरे की अभ्यस्त तो हो ही चुकी थीं। कई दिनों की बढ़ी हुई दाढ़ी सफेद कांटों जैसी लग रही थी। वह अपने गालों को बेचैनी से रगड़ रहे थे। मेरी दृष्टि अपनी ओर देखकर गला खंखारते हुए बोले—"किसन का खत आया कोई ?"

मैंने बहुत सतर्कता से उत्तर दिया—"कहां, उसका तो पिछले तीन महीने से कोई पता ही नहीं चल रहा है। मैं स्टेशन से लौट रहा था तो सोचा आपसे ही मालूम करता चलूं।" कुछ पल ठहर कर मैंने अपने झूठ में विश्वास पैदा करने की कोशिश की "इस बार तो किसन ने हद ही कर दी—महीने-दो महीने में पहले कुछ न कुछ लिखता ही रहता था लेकिन भले आदमी ने तीन महीने निकल जाने पर भी कार्ड तक नहीं लिखा।" अपनी बात समाप्त करके उनका चेहरा देखना मेरे लिए कठिन यंत्रणा से गुज़रने के समान था। उनकी लम्बी आह जैसी सांस से मैंने अनुमान लगा लिया कि पिछले आधे घंटे में उन्होंने जिस निश्चित प्राप्ति की उम्मीद बांधी थी वह इस लम्बी सांस के साथ दम तोड़ गई। निहालचन्द जी ने डूबती आवाज़ में कहा, "अरे पुत्तर तुझे भी नहीं लिखा तो हमें कौन प्रेम पत्तर भेजने वाला है वह माणस।"

मैंने उस टूटी और घायल उम्मीद को फिर से खड़ा करने के लिए कुछ ऐसे वाक्य बोलने के सम्बन्ध में सोचना चाहा जिनसे निहालचन्द जी अपने बेटे के प्रति भावुक हो उठें और अर्थ कामना से विरत होकर बेटे के बारे में कुछ बोलने और बतलाने लगें। मैं चाहता था कि वह बेटे की अनजानी परिस्थितियों पर भी बातें करें—उसकी कठिनाइयों को समझें—उसकी शादी के बारे में बातें करें या फिर उसे बुलाने के लिए कहें। मैं आशा लगाये बैठा था कि उन्हें किसन की बहुत याद आती होगी—उसकी अनुपस्थिति इस बढ़ती उम्र में बहुत सालती होगी—शायद वह ग़म से लबरेज कण्ठ से कांपते शब्दों में कुछ कहेंगे—मगर मेरी आशा के अनुरूप वैसा कुछ नहीं हुआ या हो सकता है वह उनके भीतर ही घट रहा हो। मैं भी उनमें भावुकता जाग्रत करने वाले वाक्य बोलने में असमर्थ रहा।

निहालचन्द जी तकिये पर पीठ लगाकर अधलेटे हो गये। माता जी अभी तक भी नही लौटी थीं। बात-चीत का कोई मुद्दा न देखकर मैंने उठने की सोची। मुझे चलने को तत्पर देखकर वह एकाएक सजग हो उठे और व्यस्तता से बोले—"पुत्तर दो चार मिंटों में अब सुमित्रा आती ही होगी—उससे मिल के चले जाना। सुमित्रा कई दिन से बहोत उदास है। किसन की महीने दो महीने खबर नहीं मिलती तो मुझे भेजने की जिद करने लग पड़ी है।" फिर मुझे समझाने के अन्दाज़ पर उन्होंने बातें शुरू कर दीं—"तुम तो पुत्तर जानते हो–अब हमारा यहां क्या पड़ा है–ले दे के एक किसन··· ।" उन्होंने अपनी बात पूरी नहीं की–शायद उनका कण्ठ भर आया था। 'चलूं या अभी माता जी की और प्रतीक्षा करूं' इसी मन:स्थिति में मैं डावांडोल हो रहा था कि तभी मेरे मित्र की माता जी हाथ में झोला लटकाये कमरे में आ गईं। उनके लू के थपेड़ों से झुलसे हुए चेहरे पर मुझे देखते ही उल्लास उमड़ आया। मुझे अपने मन की हीनता पर अफसोस हुआ कि मैंने उनके चेहरे के उस सहज उछाह को भी किसी आशा-प्रत्याशा में बंधा हुआ ख्याल किया–गोया मेरी नज़र में मां की व्याकुलता से झरता हुआ अजस्र स्नेह भी किसी भौतिक उपलब्धि से सम्बद्ध है।

किसन की मां के चेहरे पर झुर्रियों का सघन जाल और भी जटिल हो गया था और आंखों की ज्योति और भी तेज़ी से बुझ रही थी। उसने झोले को मेज पर टिकाते हुए उत्सुकता से पूछा–"पुत्तर, किसन का कोई खत-पत्तर आया तेरे वल्ल ? कैसा है वो ?" वे बिना रुके एक सांस में बोलती जा रही थीं–"मैं तो तेरे पिता जी से इतनी बार कहती हूं बम्बई तक जाने में ऐसा क्या पड़ा है–दुकान से छुट्टियां लेकर भी तो घर में पड़े-पड़े काट देते हैं। किसन का दुःख-सुख देख आओगे तो ऐसा क्या गजब हो जायेगा। बड़े सहरों में दंगे-फिसाद भी तो होते रहते हैं–पड़ोस की सरदारनी···।"

किसन की मां की बात निहालचन्द जी ने पूरी नहीं होने दी–हवा में हाथ लहराकर खिन्नता और किंचित रोष से बोले "यह पागल न कुछ जानती है न समझती है–भला बम्बे यहीं धरा है ? एक तो अनजान जगह–फिर उसका भी कुछ ठीक पता नहीं–मिले या ना मिले–रुपये ढाई तीन सौ अलग फेंकने को चाहिए। किसी का मिलने-जुलने का टेम हो–कहीं नौकरी-चाकरी हो तो आदमी जा के अपना सिर फोड़े। हवा को मुट्ठी में बन्द करने को कहती है–बस इसकी तो घर बैठी की जुबान हिलती है।"

वह बेहद उत्तेजित हो उठे थे। मैंने उनकी बात सुनकर स्वीकार की मुद्रा में गर्दन हिला दी। किसन की मां बाजार से जो फल लेकर आई थीं उनमें से एक दो शायद मेरे लिए काट रही थीं। मैंने सोचा कि उन्हें रोकूं मगर फिर यह सोचकर चुप हो गया कि कहीं वह निहालचन्द जी के लिए न काट रही हों। माता जी ने दो सेब काट कर मेरे और निहालचन्द जी के बीच चारपाई पर तश्तरी में रख दिये। निहालचन्द जी के आग्रह पर मैंने एक टुकड़ा उठा तो लिया मगर उसके बीजों को थूकने के लिए मुझे दो बार बाहर नाली पर जाना पड़ा। मैंने दूसरा टुकड़ा उठाने से बचना चाहा पर वह आग्रहपूर्वक बोले "नहीं बेटा यह तो तुम्हें खाने ही पड़ेंगे–तुम आ जाते हो तो मुझे किसन ही मिल जाता है।" उनके इस वाक्य के पीछे न जाने कितनी कांपती हुई कामनायें थीं जिन्हें झेल जाना या दरगुज़र कर जाना एक जैसा कठिन था। मैंने उठते हुए कहा, "मैं किसन को आज ही खत लिखकर मालूम करता हूं कि मामला क्या है। उसका जवाब आते ही आपको खबर करूंगा···।"

किसन की मां मुझे छोड़ने के लिये बाहर तक निकल आई और दरवाज़ा उढ़का कर गली में खड़ी हो गई क्योंकि मेरी बातें सुनने का अवसर उन्हें महज़ कुछेक मिनटों के लिए ही मिला था। शायद संक्षेप में वह किसन के समाचार मुझसे अलग में जान लेना चाहती थीं। गली में खड़ी होकर वह मुझे अत्यन्त कातर दृष्टि से देखने लगीं। मेरी तीव्र इच्छा हुई कि मैं उन्हें बतला दूं कि किसन का खत मुझे अभी कल ही मिला है–उसमें उसने जल्दी ही कुछ पैसा भेजने की बात भी लिखी है। और यह बतला देने में मुझे कोई हर्ज़ भी दिखाई नहीं पड़ा परन्तु मैंने हठपूर्वक अपनी इच्छा पर काबू पाया। मैं उन लोगों को मात्र बेटे की सूचनाएं नहीं देता था–उन सूचनाओं के सन्दर्भ ऐसी वस्तु से जुड़े हुए थे जिससे उनकी आंखों

में एक खास किस्म की आशावादिता उभर उठती थी। किसन की मां की करुणासिक्त आंखें देखने से मुझे डर लगने लगा। ऐसी आंखें किसी को भी वेधती हैं और स्थितियां हैं कि हमेशा अपने ढंग से शहज़ोर होकर शर्तों का जुआ खेलती हैं–कोई उनके लिए तैयार हो चाहे न हो।

अपनी बात संक्षेप में कहकर मैंने आगे बढ़ने की सोची–धूप अभी भी काटने वाली थी। किसन की मां ने मुझे फिर कभी जल्दी ही आने के लिए कहा। अभी मैं आगे बढ़ा भी नहीं था कि निहालचन्द जी की कांपती आवाज़ में एक चीख सी सुनाई पड़ी। "सुमित्तरा ओ सुमित्तरा–तुसी कहां हो–मुझे पाणी तो दो।" उनकी इस आवाज़ ने मुझे चौंका दिया। उस ध्वनि से मुझे लगा कि उन्हें यह जानने की जबरदस्त उत्सुकता है कि वह बाहर गली में खड़ी मुझसे क्या बातें कर रही हैं। सम्भवत: उनके मन में कहीं यह शंका सिर उठा रही थी कि मैं गुप चुप किसन की मां को कुछ दे रहा हूं।

किसन की मां निहालचन्द जी के अधैर्य पर झुंझला कर बड़बड़ाती हुई अन्दर चली गई थी। उसकी चिड़चिड़ाहट से अनुपलब्धि का क्षोभ फूट रहा था। शायद इस समय दोनों संशयग्रस्त थे कि मैंने उन दोनों को अलग-अलग कुछ ज़रूर दिया है।



निर्भयता

आध्यात्मिकता की पहली शर्त है—निर्भयता। कायर व्यक्ति कभी भी चरित्रवान नहीं बन सकते। सद्गुणों के विकास के लिए निर्भयता परम आवश्यक है। निर्भयता के बिना कोई भी व्यक्ति कैसे सत्य की खोज कर सकता है तथा किसी से वास्तविक प्यार कर सकता है? निर्भयता का अर्थ है– हर प्रकार के भय से मुक्ति। यह भय रोग, शारीरिक आघात, मृत्यु, प्रिय वस्तु गँवाने, प्रियजन से विछोह, प्रतिष्ठा की हानि आदि किसी भी रूप में हो सकता है।

—महात्मा गाँधी

कहानी

नायक : खलनायक

—जवाहर सिंह

और यह आठवाँ दिन भी यों ही निकल गया। सुबह के दो-तीन घंटे और शाम को आफिस से निकलने के बाद से रात के आठ-नौ बजे तक वह रोज ही शहर के विभिन्न मुहल्लों और गलियों का चक्कर काटता रहा है। जिस दिन से वह इस शहर में आया है, जैसे उसके पैरों में चर्खी बंध गयी है। इतनी परेशानियों और दौड़-धूप के बाद नौकरी मिलने की सारी खुशी···सारा उत्साह धीरे-धीरे कपूर की तरह उसके भीतर से उड़ता जा रहा था और एक अजीब-सी ऊब···एक दमघोंट निराशा धूल की परत की तरह उसके तन-मन पर छाती जा रही थी।

उसे कतई उम्मीद नहीं थी कि इतने बड़े शहर में उसे रहने के लिए एक कमरा तक भी नहीं मिल सकेगा। ···इतने लम्बे-चौड़े बड़े-बड़े मकान···इतनी ऊंची-ऊंची बहुमंजिली इमारतें···रोशनी से जगमगाते हजारों-हजार फ्लैट्स और उसे रहने के लिए एक कमरा तक नहीं ··! वह मुफ्त में तो किसी से कमरा मांगता नहीं है···उचित किराया देने को तैयार है, दो-चार महीने का अग्रिम किराया भी कोई मांगे तो वह खुशी-खुशी दे देगा; लेकिन पहले कोई कहे भी तो कि हां, मैं तुम्हें कमरा दूंगा, मेरी ये-ये शर्तें हैं! यहां तो हालत यह है कि मकान या कमरा खाली होने की सूचना पाकर किसी के पास जाओ, तो 'बन्दूक की गोली की तरह पहला ही सवाल दाग दिया जाता है—शादीशुदा हो या कुंवारे? कुंवारे होने की बात सुनकर मकान मालिक या मालकिन उसके चेहरे को ऐसे घूर-घूर कर देखने लगते हैं, जैसे वह कोई चोर-उचक्का हो···गुण्डा-बदमाश हो। फिर कोई न कोई बहाना करके उसे टरका दिया जाता है।

आखिर होटल में वह कब तक पड़ा रह सकता है! शहर देखने के लिए आया हुआ वह कोई टूरिस्ट तो है नहीं कि दो-चार दिन होटल में रह लेगा। उसे तो कई वर्षों तक इस शहर में रहना पड़ सकता है। अभी-अभी नौकरी शुरू ही की है, ट्रान्सफर की बात

भी एक-दो साल के बाद ही सोची जा सकती है। ···कम से कम दो-तीन वर्ष तो यहां रहना ही पड़ेगा··· ।

पसीने से तर कमीज खोलकर उसने हैंगर पर टांग दी और पैंट-जूता पहने ही वह पलंग पर लुढ़क-सा गया। थकावट से सारा शरीर चूर हो रहा था। पसीने से भीग कर गंजी देह से चिपक गयी थी। उसकी इच्छा हुई कि गंजी भी निकाल कर वह फेंक दे और नंगे शरीर ही काफी देर तक पंखे के नीचे पड़ा रहे। लेकिन बगल वाली सीट पर लेटे सूट-बूट-टाई वाले बंगाली बाबू को शायद उसकी यह हरकत अच्छी न लगे, इसलिए मन मसोस कर भीगी गंजी पहने ही वह चुपचाप पड़ा रहा।

होटल का नेपाली छोकरा गिलास में पानी लेकर आया, तो वह एक ही सांस में पूरा गिलास खाली कर गया और छोकरे को गिलास लौटाते हुए उसकी ओर देखकर होठों को थोड़ा फैलाकर मुसकरा दिया। लड़का भी मुसकाया और गिलास लेकर जाते-जाते बोला—और कुछ चाहिये सा'ब ?

—एक कप चाय · खूब गर्म।

लड़का चला गया तो वह जूते खोलकर आराम से पैर फैलाकर बिछावन पर लेट गया। लेटे-लेटे वह अपने घर के बारे में सोचने लगा। नौकरी मिलने की खुशी में मां ने सत्यनारायण स्वामी की कथा करायी थी और पूरे मुहल्ले को प्रसाद बांटा था। चलते समय बाबू जी ने अपनी पास-बुक से निकालकर तीन सौ रुपये दिये थे और बड़ी ममता भरे स्वर में बोले थे—"देख राजू, नई जगह में खूब संभल कर होशियारी से रहना पड़ता है। तुम किराये पर एक कोठरी ले लेना, तीस-चालीस में रहने लायक कमरा अब भी मिल जाता होगा, वैसे हमारे जमाने में तो पांच-सात रुपये में एक कोठरी शहर में मिल जाती थी और तीस-चालीस में पूरा मकान किराये पर मिल जाता था। अकेले आदमी हो, एक कमरे में काम चल जायेगा···फिलहाल आस-पास के किसी भोजनालय में खाना खा लेना, बाद में वेतन मिलने पर ज़रूरी बर्तन, स्टोव आदि खरीद कर स्वयं रसोई आदि का इन्तजाम कर लेना। ···होटल में खाना बहुत महंगा पड़ेगा और स्वास्थ्य के खिए भी ठीक न होगा।"

फिर एक क्षण रुककर वह मुस्कराते हुए बोले थे—"घबराओ मत, अगले साल मैं तुम्हारे लिए रसोई-पानी करने वाली का भी स्थाई इन्तजाम कर दूंगा···तब एक बड़ा-सा मकान किराये पर ले लेना और मियां-बीवी मौज से रहना ।"

लेकिन माँ ने बाबू जी की बात बीच में ही काटकर कहा था—"अगले साल क्यों··· मैं तो अपने राजू की शादी इसी साल कर दूंगी। लड़के की सरकारी नौकरी लगने की खबर सुनकर सैकड़ों रिश्तेदार अपनी लड़कियों का पैगाम लेकर दरवाजे पर पहुँचने लगेंगे···शादी इसी साल कर ली जायेगी।"

बाबू जी कुछ नहीं बोले थे, लेकिन माँ की बातें उन्हें शायद पसन्द नहीं आयी थीं। वह चुपचाप बाहर निकल गये थे और तब छोटी बहन रेखा तथा भाभी ने शहर से लाने के

लिए अपनी-अपनी फरमाइशें पेश करनी शुरू कर दी थीं ··ऊंची एड़ी की सैंडिलें···लिपस्टिक ···टेरीन की साड़ी···चोटी···वैनिटी पर्स···और न जाने कितने-कितने सामान।

वह मन ही मन हिसाब लगाने लगा···। उसे लगा, उन लोगों की सारी फरमाइशें पूरी करने में शायद दो माह का वेतन उसे खर्च करना पड़ जाय, तब भी कुछ न कुछ बाकी रह जायेगा।

"सा'ब, आपके लिए चाय···।" वही छोकरा चाय का प्याला हाथ में थामे उसके सिरहाने खड़ा था।

"मेज पर रख दो···और हां, दस बजे के पहले मुझे भोजन के लिए जगाना मत।" उसने आंखें बन्द किये पड़े-पड़े ही कह दिया—"बहुत थक गया हूं मैं · नींद आ रही है।"

सचमुच आज वह बेहद थक गया था। रविवार होने के कारण ऑफिस बन्द था। आठ बजे सुबह ही होटल से वह निकल पड़ा था। रास्ते में ही एक रेस्तरां में उसने हल्का-सा नाश्ता किया था और फिर सारा दिन कमरा ढूंढने के चक्कर में शहर में भटकता रहा था। लगभग एक दर्जन कमरे उसने आज देखे थे, परन्तु बात कहीं नहीं बनी थी। कही कमरे उसे पसन्द नहीं आये थे और कहीं कमरे वालों को वह नहीं पसन्द आया था। और आज दस-ग्यारह घंटों की लगातार और जी तोड़ कोशिश के बावजूद भी कहीं कुछ नहीं हो सका था।

यह एक अजीब परेशानी थी। कमरे की बात शादी पर आकर अटक जाती और शादी कोई ऐसी चीज तो है नहीं कि आज ही···अभी कर ली जाय या बाजार से रेडीमेड की दुकान से एक अदद औरत खरीद कर मकान मालिक के आगे खड़ी कर दी जाय और सीना ठोंक कर कह दिया जाये—देखिये बाबूजी, यह मेरी औरत है···अब तो आप मुझे अपने मकान में रहने दीजियेगा न···अब तो मुझसे आपको कोई खतरा नहीं है न···।

आज से दस दिन पहले तक अपने कुंवारेपन पर उसे गर्व महसूस होता था। अगर उससे कोई पूछता था कि क्या आप शादीशुदा हैं, तो वह बड़ी लापरवाही से मुस्करा कर मजाकिये लहजे में जवाब देता था—भगवान् की दया है···अभी इस मुसीबत से बचा हुआ हूं···" या 'मुआफ़ कीजिये भाईसाब, अभी तक इस गुनाह से बचा हुआ हूं—" लेकिन आज महसूस हुआ कि अब तक शादी न करके ही उसने सबसे बड़ा गुनाह किया···मुसीबत मोल ली। कमरा ढूंढने के सिलसिले में चार-पांच घंटे तक विभिन्न मुहल्लों और गलियों का चक्कर लगाकर जब वह थका-हारा उदास मन होटल की ओर लौटता है, तो उसकी इच्छा होती है कि खाना-पीना करने के पहले अगर कहीं कोई लड़की मिल जाये, तो पहले वह उससे विवाह ही कर ले फिर बाद में और कोई काम करे। लेकिन यह बात सोचते-सोचते उसे अपनी इस बेहूदी कल्पना पर स्वयं ही हंसी आ जाती है और रास्ता चलते-चलते वह यों ही पागलों की तरह जोर से हंस पड़ता है। तब वह चौकन्ना होकर जल्दी-जल्दी अपने आस-पास के लोगों की ओर देखने लगता है कि किसी ने उसे यों हंसते हुए देख तो नहीं लिया है।

उसने इस समस्या पर कई बार स्थिर चित्त होकर गहराई से विचार किया है, अपने आप से ही तर्क-वितर्क किया है, पर वह समझ नहीं पाता कि रहने के लिए कमरा देने और रहने वाले के विवाहित-अविवाहित होने में कौन-सा कार्य-कारण सम्बन्ध है !…क्या विवाहित लोगों को ही घर में रहने का अधिकार है और सारे अविवाहितों को फुटपाथ पर अपनी रातें गुजारनी चाहिये ?…क्या अविवाहित आदमी विश्वास का पात्र नहीं रह जाता ?…क्या सारे अविवाहित लोग लुच्चे-लफंगे, चरित्रहीन और दूसरों की बहू-बेटियों पर डोरे डालने वाले ही होते हैं ? क्या उनके लिए मकान मालिक या उसके पास-पड़ोस की जवान औरतों से आंखें लड़ाने…इश्क फरमाने अथवा लड़कियां भगाने के सिवा दूसरा कोई महत्वपूर्ण काम ही नहीं रह जाता ! उसने तो कितने ही शादीशुदा बाल-बच्चेदार लोगों को अपनी पत्नी से आंखें बचाकर पास-पड़ोस की औरतों को घूरते, उनसे आंखें लड़ाते या गन्दे इशारे करते देखा है। वह ऐसे कई लोगों को नजदीक से जानता है जिनकी पत्नियां हर वक्त उनके पीछे खुफिया पुलिस की तरह लगी रहती हैं अन्यथा वे रोज ही कोई न कोई नया गुल खिलाते रहें। फिर अविवाहितों के सम्बन्ध में ही ऐसी गलत धारणा क्यों बना ली गयी है !

बहुत देर तक इन्हीं विचारों में उलझे हुए पता नहीं कब उसे नींद आ गयी। उसने एक अजीब-सा सपना देखा—इस शहर के जितने अविवाहित युवक हैं उन्हें लोगों ने घरों से निकाल बाहर कर दिया है। वे सभी एक स्थान पर एकत्र होते हैं और जुलूस की शक्ल में आगे बढ़ते हैं। उनके हाथों में झंडे, पोस्टर और तख्तियां हैं जिन पर अजीब-अजीब नारे लिखे हुए हैं—'शादीशुदा मुर्दाबाद', 'विवाहितो सावधान…तुम्हारी धांधली नहीं चलेगी', 'हमें मकान दो या बीवी दो' आदि-आदि। जुलूस पूरे शहर का चक्कर लगाता है और रात हो जाने पर फुटपाथ पर सभी सो जाते हैं। …सड़क पर बहुत से पति-पत्नी हाथ में हाथ डाले टहल रहे हैं। इन अविवाहित युवकों को देखकर बहुत से पति इन्हें चिढ़ाने के लिए अपनी-अपनी पत्नियों की कमर या कंधे पर हाथ रखकर मुस्कराते हुए इनके पास से गुजरते हैं। लेकिन उनकी पत्नियां पतियों से हाथ छुड़ाकर इन युवकों की ओर भागने लगती हैं। पति उन्हें रोकने की कोशिश करते हैं लेकिन पत्नियां दौड़ कर एक-एक युवक का हाथ पकड़ लेती हैं। एक खूबसूरत औरत आकर उसका भी हाथ पकड़ लेती है तब तक उसका पति दौड़ता हुआ आता है और अपनी पत्नी का हाथ पकड़ खींचने लगता है। दोनों में मारपीट शुरू हो जाती है…और उस औरत का पति उसका हाथ पकड अपनी पत्नी को उसकी गिरफ्त से छुड़ाने लगता है।

…और तभी यक-बयक उसकी नींद टूट गयी। उसने घबराकर आंखें खोल दीं। होटल का नेपाली छोकरा उसकी बांह पकड़ खींचकर जगा रहा था—"सा'ब, खाना नहीं खाइयेगा · उठिये खाना लाया हूं।"

वह आंखें मलते हुए उठकर बैठ गया, लेकिन अब भी उसकी सांस जोर-जोर से चल रही थी। इसके बाद बहुत देर तक इस विचित्र सपने को याद करके वह मन ही मन हंसता रहा था।

तीन-चार दिन और गुजर गये थे इसी तरह के चक्कर में। इस बीच अजीब-अजीब लोगों से उसकी मुलाकातें हुईं और विचित्र प्रकार के अनुभव भी हुए। और तभी उसे अचानक ही एक दिन अप्रत्याशित रूप से एक कमरा मिल गया। इसके लिए उसे सफेद झूठ बोलना पड़ा था, पर इसके सिवा अब उसके पास दूसरा कोई उपाय भी नहीं रह गया था। इस कमरा-तलाश-अभियान से बुरी तरह ऊब-थक कर जब वह मन ही मन निर्णय कर चुका था कि कुछ दिनों तक इसी होटल में एक छोटा-सा कमरा लेकर पड़ा रहेगा और किसी छोटे शहर में अपने ट्रान्सफर के लिए कोशिश करेगा या जल्दी ही कहीं शादी कर लेगा, चाहे जैसी भी लड़की मिले ; उसी समय उसके कार्यालय के एक सहयोगी ने सिविल लाइन्स के पीछे वाले मुहल्ले में एक छोटा-सा क्वार्टर खाली होने की सूचना दी थी। दफ्तर से आधे दिन की छुट्टी लेकर वह उसी दिन मित्र के साथ उस क्वार्टर को देखने गया था।

मकान मालिक का कुछ ही महीने पूर्व देहान्त हो गया था। उनकी विधवा पत्नी अपनी दो अविवाहित लड़कियों और बारह-तेरह साल के एक लड़के के साथ उस मकान में रहती थी। आर्थिक तंगी के कारण ही उन्होंने अपने रिहायशी मकान का एक हिस्सा किराये पर उठा देने का निर्णय किया था। मकान मालकिन ने जब उससे पूछा कि वह अविवाहित है और अकेला ही यहां रहेगा, तब उसको कुछ बोलने का मौका दिये बिना ही उसके मित्र ने तपाक से जवाब दे दिया—"नहीं मां जी, ये विवाहित हैं लेकिन अभी इनकी पत्नी कुछ दिनों के लिए मायके गयी हैं, एक-दो माह में लौट आयेंगी।"

अपने मित्र की बातें सुनकर वह एकदम सन्नाटे में आ गया था, लेकिन अब उसका प्रतिवाद भी तो नहीं किया जा सकता था। उसने अपनी बागडोर अपने मित्र के हाथों में सौंपकर खामोश रहने में ही अपनी भलाई समझी थी।

"···ठीक है बेटा," बुढ़िया एक लम्बी सांस लेकर बोली, "अपनी बहू को जल्दी बुला लेना, मेरी दो-दो सयानी लड़कियां हैं, इसीलिए किसी छड़े को मैं अपने घर में नहीं रहने देना चाहती। ···पास-पड़ोस के लोगों को तुम जानते ही हो, घर के मालिक-मुख्तार के न रहने पर तरह-तरह की बदनामी फैला देते हैं। मैं कमजोर विधवा किसका-किसका जवाब देती फिरूंगी। ···फिर तुम मेरी जात-बिरादरी के हो यह और भी अच्छा है···तुम्हारी बहू आ जायेगी, तो मेरी शीला, शान्ति और रोशन को एक भाभी भी मिल जायेगी, उनका भी मन लगेगा। तुम चाहो तो आज से ही रहना शुरू कर दो, मैं तुमसे दो महीने का एडवान्स न लेकर एक ही महीने की पेशगी लूंगी···। क्या कहूं भैया, रोशन के पिता जी के अचानक चले जाने से हम लोगों पर विपत्तियों का पहाड़ ही टूट पड़ा, नहीं तो मुझे क्या जरूरत थी घर किराये पर उठाने की···तीन ही तो कमरे हैं, अब किसी तरह दो कमरों से ही अपना काम चला लेंगे···"

बुढ़िया ने अपने दुःखों और विपत्तियों का जो पिटारा खोला, तो बस एक घंटे तक लगातार बोलती और रोती रही थी। अंत में दूसरे दिन अपने बोरिये-बिस्तर समेत

उसके यहां आने की बात कहकर उन लोगों ने जल्दी-जल्दी उससे पिण्ड छुड़ाया था और वहां से भागे थे।

बुढ़िया के घर से बाहर निकलकर सड़क पर आते ही वह अपने मित्र श्रीवास्तव का कंधा झकझोरते हुए घबराये स्वर में बोला था—"यार, यह किस चक्कर में तुमनें मुझे फंसा दिया ··अब इतनी जल्दी मैं बीवी कहां से लाऊंगा? ···तुम तो यक-बयक इस तरह सफेद झूठ बोल गये और वह भी चेहरे पर जरा भी उतार-चढ़ाव लाये बिना कि क्या कोई पेशेवर कचहरिया गवाह भी ऐसा नाटक करेगा। क्या सचमुच पहले से ही यह सब सोच-साच कर तुम चले थे?"

"दोस्त, तुम्हारी यह रोज-रोज की परेशानी देखकर और उन परेशानियों की दर्द-भरी कहानियां सुनते-सुनते मैं भी बेतरह परेशान हो उठा था।" श्रीवास्तव मुस्कराते हुए बोला, "आजके जमाने में बिना थोड़ा-बहुत झूठ बोले काम चल ही नहीं सकता है। दफ्तर में बॉस से झूठ बोलकर छुट्टी लेनी पड़ती है कि पत्नी को अस्पताल में दिखाना है और पत्नी से झूठ बोलना पड़ता है कि बॉस ने किसी जरूरी काम से अपने बंगले पर बुला लिया था और तब जाकर वकिंग डे में कोई अच्छी पिक्चर देखने की मुराद पूरी होती है। ···ये सब छोटे-मोटे कामचलाऊ झूठ होते हैं प्यारे, ऐसे झूठों से पाप नहीं लगता···इन्हें अहिंसक झूठ कहा जाता है। जैसे डालडा घी नहीं है फिर भी उसे लोग घी ही कहते हैं, उसी तरह इस तरह के काम निकालू झूठ खांटी झूठ की कोटि में नहीं आते, फिर भी लोग इन्हें झूठ ही कहते हैं। समझे···? क्या समझे?" और श्रीवास्तव मुंह खोलकर घोड़े की तरह हिनहिनाने लगा था।

"यह तुम्हारी फिलासफी तो मैंने सुन ली, पर अब बतलाओ कि इस समस्या का आखिर हल कैसे होगा," उसने श्रीवास्तव से पूरी गम्भीरता से कहा, "वह बुढ़िया जब कुछ दिनों के बाद कहेगी कि पत्नी को मायके से बुलाते क्यों नहीं, तब मैं क्या करूंगा? ···किस-की पत्नी लाकर घर में बैठा लूंगा · तुम अपनी पत्नी को भेज दोगे क्या?"

"इसकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी यार, क्यों घबराते हो···," श्रीवास्तव बुजुर्गों की तरह परम निश्चितता से बोला, "जब एक नाटक शुरू ही कर दिया है तब उसे अंतिम पटाक्षेप तक पहुँचाकर छोड़ूंगा···बस तुम मेरे निर्देशन के अनुसार ठीक-ठीक अभिनय करते चलना। ···एक झूठ के पीछे झूठों की इतनी बड़ी लाइन लगा दो कि झूठ ही सच बन जाये, आजके युग की यही सबसे बड़ी खोज है · महत्त्वपूर्ण आविष्कार।"

और इसके बाद ही एक मनोरंजक नाटक शुरू हो गया था, जिसमें न चाहते हुए भी नायक की भूमिका में उसे उतरना पड़ गया था, नायिका रंगमंच पर तो कभी आयी ही नहीं, पर पर्दे के पीछे से ही वह अपना पार्ट बखूबी निभाती जा रही थी और श्रीवास्तव बड़े कुशल हाथों से इस नाटक के सारे सूत्रों का संचालन करता जा रहा था।

उसी दिन शाम को वह अपना सारा सामान होटल से उठाकर नये कमरे में आ गया था। कहने के लिए यह कमरा तो एक ही था, पर उसके आगे और पीछे चौड़े बरामदे

थे, पीछे वाले बरामदे में ही एक तरफ बाथरूम था और दूसरी ओर एक छोटा पार्टिशन-वाल देकर किचन के लिए कमरा निकाल दिया गया था। इस प्रकार आगे वाला बड़ा कमरा केवल बेडरूम के रूप में ही प्रयोग किया जा सकता था। आगे वाला बरामदा हालाँकि खुला था परन्तु थोड़े परिवर्तन के बाद उसे ड्राईंगरूम बनाया जा सकता था। पानी-बिजली की भी खूब सुविधा थी और इतनी सारी सुविधाओं के बावजूद भी किराया कोई खास अधिक नहीं था—मात्र अस्सी रुपये। सब कुछ एक बार फिर से देख लेने के बाद उसने अपने भाग्य को सराहा कि उसे इतना सुन्दर क्वार्टर इतने कम पैसों में मिल गया। अब उसे अपनी बुद्धि पर तरस आ रहा था कि इतने दिनों से यह छोटी सी बात उसके जेहन में क्यों नहीं आ रही थी। महज एक छोटा-सा झूठ बोल देने से सारा काम कितना आसान हो गया !

और तभी उसके सामने 'वह छोटा-सा झूठ' अपना भयंकर जबड़ा फैलाये एक समस्या के रूप में तन कर खड़ा हो गया…इतनी जल्दी वह बीवी कहां से लायेगा…? कहीं इस झूठ का पर्दाफाश हो गया तब… ? लेकिन उसे श्रीवास्तव की बुद्धि पर भरोसा था। उसने अपने आपको विश्वास दिला दिया कि श्रीवास्तव जरूर कोई न कोई रास्ता निकाल देगा…या हो सकता है, उसने पहले ही ऐसी कोई योजना बना भी ली हो ; तभी तो कह रहा था कि तुम मेरे कहने के अनुसार अपना पार्ट खेलते चलो, नाटक को अंतिम पटाक्षेप तक पहुंचाकर छोड़ूंगा। …भगवान् जाने कैसा नाटक वह मुझसे खेलवाना चाहता है…कहीं कोई ऐसी-वैसी लड़की न लाकर घर में बैठा दे… ! इसी तरह की उलझनों में खोये-खोये न जाने उसे कब नींद आ गयी थी और वह बड़े निश्चिंत भाव से सुबह के आठ बजे तक सोया रहा था। बाहर से दरवाजे पर जोर-जोर से दस्तकें पड़नी शुरू हुई थीं, तब वह घबराया-सा उठकर दरवाजा खोल बाहर निकलते-निकलते मकान-मालकिन से टकरा गया था। बुढ़िया हंसने लगी थी—"अरे बेटा, देखकर चला करो·· ऐसे घबराये क्यों हो…? वह बेहद लज्जित हो गया था और हकलाते हुए उसने बुढ़िया से क्षमा मांगी थी।

वह कमरे में लौटने लगा तभी बुढ़िया की आवाज उसे फिर सुनाई पड़ी—"बहू को चिट्ठी लिखकर जल्दी बुला लो बेटा, खाने-पीने की तो सुविधा हो ही जायेगी हर तरह का आराम रहेगा, यूं आठ बजे तक कमरा बन्द किये सोये तो नहीं रहोगे।"

"हां मां जी, अब तक तो मैं सब्जी का झोला लटकाये बाजार का एक चक्कर लगाकर लौट आया रहता…।" वह हंसते हुए बोला। बुढ़िया भी हंसने लगी… "यही तो परिवार का सुख है बेटा…।" और वह अपने कमरे की ओर लौट गयी।

पंद्रह-बीस रोज तक सब कुछ बड़ी शान्ति से गुजरता गया। लेकिन महीना लगते न लगते बुढ़िया रोज-रोज पत्नी को बुलाने के लिए तंग करने लगी। जब भी उसे मौका मिल जाता कोई न कोई रास्ता निकाल कर वह इस बात की याद दिला देती कि पत्नी को बुलाने में इतनी देर क्यों कर रहा है। एक दिन तो वह एकदम पीछे ही पड़ गयी, लगी उपदेश देने—"देख बेटा, जमाना बड़ा खराब है…जवान विवाहित लड़की का अधिक दिनों

तक मायके में रहना ठीक नहीं है। तुम्हारे मां-बाप कैसे हैं कि अब तक वहां बहू को छुट्टा सांड़ की तरह चरने को छोड़े हुये हैं ! कहीं कुछ हो-हवा जाये · क्या ठिकाना जवानी में भले-बुरे का इतना ख्याल भी तो नहीं रहता·· कहीं पैर फिसल ही जाये लड़की का··· । तुम दो दिन की छुट्टी लेकर उसे बुला ही लाओ तुम्हारे ही भले के लिए कह रही हूँ ।"

घंटों भाषण देती रही बुढ़िया । उसके बाद उसकी दोनों लड़कियों ने भी सुबह-शाम ठोकना शुरू कर दिया · "भाई सा'ब, भाभी कब आ रही हैं···बुलाइये न उन्हें, हम लोग साथ-साथ सिनेमा जायेंगी···बाजार जायेंगी···घर पर बैठकर नये-नये डिज़ायनों के स्वेटर बुनेंगी··· ।"

वे सब इस ढंग से बातें करतीं कि कभी-कभी उसे स्वयं भी महसूस होने लगता कि उसकी पत्नी सचमुच मायके में है और अब उसे बुला ही लेना चाहिये । लेकिन दूसरे ही क्षण जब उसे वास्तविकता का ध्यान आता, तो जोर से हंस पड़ने को दिल करने लगता, पर उनके सामने हंसना भी तो खतरे से खाली नहीं था। उनकी बातें सुनकर वह ऐसा चेहरा बना लेता, जैसे सचमुच इस समस्या पर गहराई से विचार कर रहा हो ।

जब वह रोज-रोज के इस झमेले से परेशान होकर अपने मित्र श्रीवास्तव से इस नाटक के अगले दृश्य का खुलासा हाल जानना चाहता, तो वह एक विचित्र-सी शरारती मुस्कान चेहरे पर फैलाकर बात टाल जाता। अब उसे श्रीवास्तव के व्यवहार से किसी शरारतपूर्ण षडयन्त्र की बू मिलने लगी थी । श्रीवास्तव उसकी सारी बातें बड़े ध्यान से सुनता, रस ले-लेकर रोज-रोज की बातें खोद-खोद कर पूछता और आगे का रास्ता बतलाने के बदले बेहूदे ढंग से हंसी-मजाक करने लगता । अब उसे ऐसा महसूस होने लगा कि श्रीवास्तव ने जान-बूझकर उसे इस जाल में फंसा दिया है और अब मज़ा ले रहा है ।

दूसरे महीने का अंत होते-होते मकान मालकिन और उसकी लड़कियों के तगादे और उलाहने इस हद तक बढ़ गये कि उसके लिए अब वहां रहना असम्भव-सा हो गया । अब वह रात में उन लोगों के सो जाने पर चुपके से अपने कमरे का ताला खोलकर बिना बत्ती जलाये ही बिछावन पर सो जाता और सुबह उनके जगने के पहले ही वहां से उठकर चल देता । अपने ही घर में उसकी स्थिति चोरों-जैसी हो गयी थी । फिर भी किसी-किसी दिन बुढ़िया से सामना हो ही जाता । तरह-तरह के बहाने बनाकर वह बुढ़िया को समझाने-बुझाने की चेष्टा तो करता, पर स्वयं ही उसे लगता कि यह स्थिति अधिक दिनों तक चलने वाली नहीं है । इस बीच उसने चुपके-चुपके दूसरा कमरा ढूंढने का प्रयास भी किया, लेकिन कहीं मिला नहीं । वास्तव में उसे अपना यह कमरा इतना अधिक आरामदेह और सस्ता लगता था कि किसी भी कीमत पर इसे वह छोड़ना नहीं चाहता था, पर स्थितियां उसे मजबूर करती जा रही थीं ।

एक दिन शाम को जब वह अपने कमरे में लौटा तो मकान मालकिन के लड़के ने एक लिफाफा उसे दिया—'यह आपकी चिट्ठी डाकिया दे गया था ।' लिफाफा हाथ में लेकर

उसने ध्यान से देखा, पता पढ़ा, लिखावट पहचानने की कोशिश की और अजीब परेशानी में पड़ गया। पता बिल्कुल ठीक लिखा था लेकिन लिखावट उसके पहचान में नहीं आयी। सबसे अधिक आश्चर्य तो उसे इस बात का था कि इस पते पर पत्र आया कैसे···किसने पत्र भेजा यहां का पता कौन जानता है···उसे यहां का पता मालूम कैसे हुआ ? अब तक उसके सारे पत्र ऑफिस के पते से ही आते रहे हैं और उसने जान-बूझकर अपने क्वार्टर का पता सबसे छिपा रखा था। वह जानता था कि घर के, रिश्तेदारों या दोस्तों के जो पत्र आयेंगे उनमें उसके शादी-विवाह की चर्चा हो सकती है और क्वार्टर के पते पर अगर वैसा कोई पत्र आ गया और मकान मालकिन या उसकी लड़कियों ने वह पत्र पढ़ लिया तो बस सारा गुड़-गोबर हो जायेगा। इसीलिए उसने अब तक किसी को भी अपने क्वार्टर का पता नहीं दिया था, फिर भी यह पत्र आ गया था और उसी के नाम था।

उसने धड़कते दिल से लिफाफा खोला और पत्र निकालकर पढ़ने लगा :—

···प्राणेश्वर !

मैं यहां सकुशल हूं और आपकी कुशलता के लिए नितप्रति मां काली से प्रार्थना करती हूं। गत दो महीने में आपके कई पत्र मुझे मिले हैं और सब में एक ही बात आपने बार-बार लिखी है कि तुम मायके से जल्दी यहां चली आओ। क्या आप समझते हैं कि आप से अलग रहना मुझे अच्छा लगता है ? ···यहां तो एक-एक क्षण वर्ष की तरह गुजार रही हूं। आपको देखने के लिए आंखें तरस रही हैं···मन करता है पक्षी की तरह उड़कर आपके पास चली आऊं। लेकिन बात यह है कि···(मुझे बड़ी लाज लगती है, कैसे लिखूं यह बात) बात यह है कि मैं मां बनने वाली हूं···। मेरी मां और भाभी की इच्छा है कि डिलिवरी यहीं हो, इसीलिए ये लोग मुझे रोके हुए हैं। मैं भी चाहती हूं कि इससे फुर्सत पाकर ही आपके पास आऊं···वहां डिलिवरी होने से आपको बहुत परेशानी होगी। आशा है, अगले माह के अंत तक छुट्टी पा जाऊंगी···फिर तो आपके पास चली ही आऊंगी।

यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई है कि आपको एक अच्छा क्वार्टर मिल गया है और आपकी मकान मालकिन आपको अपने बेटे की तरह प्यार करती हैं। वह मुझे जल्दी बुलाना चाहती हैं···कितनी भली हैं वह ! उनको भी यह पत्र दिखा दीजियेगा ताकि तसल्ली हो जाये···। मां और पिता जी आपको आशीर्वाद दे रहे हैं और भाभी लिखवा रही हैं कि मेरी ननद की अनुपस्थिति में कहीं इधर-उधर आंखें मत लड़ाइयेगा···।

आपकी ही
सरोज

वह एक बार···दो बार···तीन बार पूरा पत्र पढ़ गया, पर कुछ भी समझ न पाया। मेज पर खुला हुआ पत्र पड़ा था और सिर पर हाथ रखे वह उसकी ओर शून्य दृष्टि से देखे जा रहा था। उसे पता भी नहीं चला कि मकान मालकिन कब से उसके दरवाजे पर आकर खड़ी है और उसकी सारी हरकतों को बड़े ध्यान से देख रही है।

—"क्यों बेटा, वहू का पत्र है न···हाल-चाल तो सब ठीक है न ? · तुम इतने उदास क्यों हो गये ··?" बुढ़िया यक-बयक उसके निकट आकर खड़ी हो गयी, तो वह सहसा चौंक कर उठ खड़ा हुआ।

"···हां मां जी, हाल-चाल सब ठी···क ही है···देखिये यह पत्र··· ।" और उसने बिना कुछ सोचे-समझे पत्र उठाकर बुढ़िया की ओर बढ़ा दिया।

बुढ़िया पत्र पढ़ती रही. मुस्कुराती रही और पूरा पत्र पढ़कर खुशी के मारे वहीं से जोर-जोर से चिल्लाकर अपनी दोनों पुत्रियों को बुलाने लगी · "अरे शीलू···ओ शान्ति, आओ-आओ अपने भैया से मिठाई मांगो···अब तुम लोगों को एक भाभी ही नहीं, एक प्यारा-सा मुन्ना भी मिलने वाला है। मुन्ना ही होगा हां···पक्की जानो भैया, चिट्ठी पढ़ते समय मेरी दाहिनी आंख जोर-जोर से फड़क रही थी··· । ···मैं तो भैया तुम्हारी ओर से महावीर जी को प्रसाद कबूल कर लेती हूं पहिलौंठ का मामला है···भगवान् सब कुशल-कुशल निभा दे "

दोनों लड़कियां आ गयीं, लड़का आ गया, पत्र फिर से पढ़ा गया, मिठाइयां खिलाने का आग्रह किया गया···दुआयें दी गयीं···मनौतियां मानी गयीं—एक घंटे तक उसके कमरे में उत्सव जैसा वातावरण बना रहा। उसे भी जबरदस्ती हंसना-मुस्कराना पड़ा, मिठाई खिलाने का वादा करना पड़ा, पर भीतर ही भीतर वह भगवान् से प्रार्थना करता रहा कि ये सब जल्दी उसके कमरे से जायें और वह कमरा बन्द कर अपने दुर्भाग्य पर फूट-फूट कर रो ले। उसका दिमाग जैसे बिलकुल सुन्न हो गया था, कुछ भी सोच पाने···कर पाने में असमर्थ। पत्र की लिखावट से स्पष्ट था कि यह पत्र किसी औरत के हाथ का ही लिखा हुआ है ! 'सरोज' नाम के अतिरिक्त कहीं कोई ऐसा सूत्र दिखाई नहीं देता था जिससे विशेष कोई जानकारी मिले, न गांव, न पोस्ट, न जिला। तारीख तक का भी उल्लेख नहीं था। लिफाफे पर लगी मुहर भी स्पष्ट नहीं थी। यह तो ठीक था कि यह पत्र उसकी स्थिति को ठोस आधार प्रदान कर रहा था और उसके हक में हर तरह से फायदेमन्द था, परन्तु समस्या यह थी कि यह पत्र भेजा किसने है ?

इसी समस्या में डूबा हुआ वह रात में सो गया। दूसरे दिन ऑफिस में भी वह उदास-उदास, खोया-खोया-सा चिन्तामग्न सारा काम जैसे-तैसे निपटाता रहा था। वह पत्र अब भी उसकी कमीज की जेब में पड़ा हुआ था और उसका ध्यान आते ही उसे ऐसा महसूस होने लगता, जैसे किसी ने उसकी जेब में ऐसा टाइमबम रख दिया है जिसके फटने का समय वह स्वयं नहीं जानता। एक अजीब-सा रहस्यमय आतंक उस पर हावी होता जा रहा था। वह बड़ी बेसब्री से लंच आवर की प्रतीक्षा करता रहा जब श्रीवास्तव को वह इस विचित्र पत्र के बारे में विस्तार से बता सके।

लेकिन लंच आवर में कैंटीन की ओर जाते समय श्रीवास्तव ने जब पीछे से आकर उसके कंधे पर एक धौल जमाते हुए हंसकर कहा—'क्यों बेटा, मकान मिल गया, बिना ब्याह किये ही 'प्राणेश्वर' कहने वाली एक पत्नी भी मिल गयी और अब कुंवारा बाप भी बनने

जा रहे हो फिर ऐसी मातमी सूरत बनाये क्यों चल रहे हो···चलो इन सारी खुशियों की दावत आज इकट्ठे ही दे डालो" तब यक-बयक उस पत्र की सारी रहस्यमयता उसके सामने खुल गयी।

"तो यह शरारत तुम्हारी ही थी··· ?" उसने श्रीवास्तव का कंधा पकड़ जोर से झकझोरते हुए आश्चर्य मिश्रित उल्लास के स्वर में कहा था, "मान गया भई तुम्हारा लोहा। मैं तो एकदम घबरा गया था पत्र पाकर··· । मेरी मूर्खता देखो कि एक बार भी तुम्हारी ओर मेरा ध्यान नहीं गया···मेरे मन में यह बात आयी ही नहीं कि ऐसा पत्र तुम भी लिख सकते हो ! लेकिन यार, वह लिखावट तो तुम्हारी हर्गिज नहीं है···किस से लिखवाया था ?"

"अपनी श्रीमती जी से। ···बड़ी आरजू-मिन्नत करनी पड़ी यार, वह तो लिख ही नहीं रही थी।" श्रीवास्तव मुस्कराता रहा।

"इतना तो मान गया कि तुम एक कुशल नाटककार हो लेकिन एक गलती तुम से भी हो गयी है।"

"वह क्या ?"

"वह यह कि तुमने मेरी उस काल्पनिक पत्नी की काल्पनिक डिलिवरी का समय इतना जल्द क्यों निर्धारित कर दिया। तीन-चार महीने बाद का समय निर्धारित कर देते तो उतने दिनों के लिए बुढ़िया की जुबान बन्द रहती। अब तो अगले महीने के बाद से ही वह फिर मुझे तंग करने लगेगी कि अब बच्चा हो गया होगा, बहु को लाते क्यों नहीं !"

"उसका उपाय नाटक के अगले दृश्य में किया जायेगा।" श्रीवास्तव शरारत से मुस्कराते हुए बोला, "घबराते क्यों हो···अगले दृश्य की पूरी योजना भी मैंने बना ली है।"

"लेकिन तुम्हारा यह नाटक कब तक चलेगा भाई ?" वह घबराये स्वर में बोला।

"जब तक तुम इसमें पार्ट करते रहने को तैयार रहो। अगर नहीं चाहते हो, तो कहो अगले ही दृश्य में पर्दा गिरवा दूं।"

"इसका मतलब कि मुझे जल्दी ही वह क्वार्टर छोड़ना पड़ेगा···!"

"बिलकुल नहीं। जब तक चाहो तब तक बने रहो वहीं। अगर क्वार्टर ही छोड़ना पड़ गया, तो इस नाटक का फायदा क्या हुआ !"

वह श्रीवास्तव के चेहरे पर भौंचक्का-सा देखता ही रह गया, जैसे उसके सामने खड़ा यह व्यक्ति उसका मित्र श्रीवास्तव नहीं, कोई जादूगर है···एक रहस्यमय आदमी।

उसे फटी-फटी आंखों से अपनी ओर घूरते देखकर श्रीवास्तव ने उसकी बांह पकड़ कैंटीन की ओर खींचते हुए हंस कर कहा, "इस नाटक के चलते तुम कुछ परेशानी महसूस करने लगे हो। लेकिन वास्तव में यह युग ही नाटक का है। जीवन के हर क्षेत्र में नाटक हो रहा है, यहाँ हर आदमी एक्टर है अर्थात् वह मूलत: जैसा है, वैसा दिखाई देना नहीं चाहता। हर आदमी एक बनावटी और दिखावटी जीवन जी रहा है···एक ओढ़ी हुई जिन्दगी काट रहा है। कचहरियों में न्याय का नाटक हो रहा है···राजनीति में कुर्सी हथियाने का नाटक, कहीं गरीबी हटाने का नाटक, तो कहीं जनता की भलाई का नाटक। नाटक ही

आजका युग धर्म है, इससे हम-तुम बच ही कैसे सकते हैं ! चलो, अपने इस नाटक के अगले और अंतिम दृश्य की रूप-रेखा तुम्हें समझा देता हूं, ताकि उसके अनुकूल अभिनय करने के लिए तुम मानसिक रूप से पहले ही से तैयारी कर लो। लेकिन अगला दृश्य समझाने के पहले तुम से खूब मिठाइयां खाऊंगा और शाम को तुम्हीं से पिक्चर भी देखूंगा।"

"तुम्हारी दोनों शर्तें मंजूर", उसने श्रीवास्तव का हाथ अपने हाथ में लेकर स्नेह से दबाते हुए कहा, "इनके अतिरिक्त भी अगर कोई तुम्हारी ख्वाहिश हो······मेरा मतलब कुछ पीने-पिलाने की, तो वह भी पूरी हो जायेगी, लेकिन इस दिन-रात की एक्टिंग······मानसिक तनाव और बुढ़िया की रोज-रोज की चख-चख से मुझे जल्दी मुक्ति दिलाओ। ······थोड़ा हिंट दे दो कि आगे कौनसी चाल चलने वाले हो अन्यथा ऐक्टिंग करने में कुछ गड़बड़ करके मैं सारा खेल ही न कहीं चौपट कर दूं······"

"इसीलिए तो मैं भी चाहता हूँ कि आगे वाला दृश्य तुम्हें समझा दूं, नहीं तो तुम जरूर कुछ गड़बड़ कर दोगे। अगला दृश्य चूंकि अंतिम भी है, इसलिए बहुत सीरियस है ······जमकर ऐक्टिंग करनी पड़ेगी।"

मिठाइयों और नमकीन की तीन प्लेटें साफ करने के बाद काफी के घूंट के साथ सिगरेट का जायका लेते हुए श्रीवास्तव ने तृप्ति की मुसकान चेहरे पर फैलाकर कहा—"खुश रहो प्यारे······आज तुमने पेट के साथ आत्मा को भी तृप्त कर दिया। आशीर्वाद देता हूं कि भविष्य में तुम इसी तरह अनव्याही कन्याओं के पति बनकर अजन्मे शिशुओं के पिता बनने के उपलक्ष्य में इस श्रीवास्तव नामक जीव को दावतें देते रहो। अब आगे का हाल सुनो और उस अनव्याही पत्नी के श्राद्ध कर्म के अवसर पर दिये जाने वाले भोज के मीनू की घोषणा भी आज ही कर डालो।" वह जोर से हंस पड़ा। उसकी भी बहुत देर से जब्त की गयी हंसी का बांध टूट गया और वे दोनों मिलकर इतने जोर से हंसने लगे कि सारा कैंटीन उन्हीं की ओर उझक-उझक कर देखने लगा।

जब हंसी का ज्वार शान्त हुआ, तो श्रीवास्तव ने लम्बी-लम्बी सांसें लेते हुए कहा, "खूब हंसे यार······बहुत दिनों के बाद आज छककर मिठाइयां खायीं और डटकर हंसे भी। ······सारा खाया-पिया पच गया······पेट हल्का हो गया। अब आगे की योजना सुन लो— "दूसरे महीने के अंतिम सप्ताह में तुम्हारी उस अभागी बीवी को बच्चा होने वाला है ······यही न उस पत्र में लिखा गया है ! उसी समय मैं तुम्हारे क्वार्टर के पते पर एक अर्जेंट टेलीग्राम तुम्हारे नाम दे दूंगा। लेकिन उसका सारा पैसा तुम्हें ही देना पड़ेगा समझ लो······हां। उस टेलीग्राम में यही लिखा होगा कि 'तुम्हारी पत्नी डिलिवरी के लिए अस्पताल में दाखिल करायी गयी है और उसकी हालत बहुत गम्भीर है। तुम रोनी-सी सूरत बनाकर अपनी मकान मालकिन से टेलीग्राम की बात बताओगे, हो सके तो बतलाते समय थोड़ा रो भी देना फिर कहना कि मैं आफिस से छुट्टी लेकर पत्नी को देखने जा रहा हूं। आठ-दस दिनों तक तुम मेरे ही घर पर रहकर वहीं से आफिस आना-जाना। लेकिन ख्याल रहे, मैं पेइंग गेस्ट के रूप में ही तुम्हें रखूंगा·····मुफ्त नहीं। बस उसके बाद कुछ अधिक

नहीं करना है। तुम अपने सिर के बाल उस्तरे से मुंड़वा लेना और मातमी चेहरा बनाकर अपने क्वार्टर पर पहुंच जाना······अर्थात् पत्नी मर गयी, उसका श्राद्ध करके घर से लौट आये हो। तुम्हारा घुटा हुआ सिर देखकर ही बुढ़िया सब समझ जायेगी। उसके बाद निश्चित होकर तुम कई वर्षों तक उस क्वार्टर में रह सकते हो। कुछ दिनों बाद बुढ़िया फिर शादी करने के लिए तुम्हें समझाना-बुझाना शुरू कर देगी और तुम यह कहकर जब तक इच्छा हो टाल सकते हो कि किसी अच्छी लड़की की तलाश में हूं।"

आन्तरिक खुशी की उत्तेजना में उठकर उसने श्रीवास्तव के पांव पकड़ लिए—"मान गये भाई तुम्हारा लोहा······सचमुच तुम एक सफल नाटककार हो······कमाल की बुद्धि पायी है। ····· आज से तुम मेरे गुरु हुए······और मैं तुम्हारा चेला।"

"बोलो, गुरु दक्षिणा क्या देते हो ?" श्रीवास्तव ने एक आंख दबाकर मुसकराते हुए कहा।

"बस अंगूठा कटवाने वाली बात छोड़कर और जो भी मांगो।" वह भी मुसकराया।

"तुम्हारा अंगूठा लेकर मुझे क्या करना है शिष्य, लोगों को अंगूठा दिखाने के लिए मेरे पास अपने ही दो अंगूठे सही सलामत हैं। हां, अगर दे सको तो अंगूठे की बगल वाली अंगुली में जो चीज पहन रखी है, वही दे दो······सोने की ही है न····· ?" वह एक सधे हुए खलनायक की तरह खोखली हंसी हंसता रहा।

उसने अपनी अंगुली से सोने की अंगूठी उतार कर श्रीवास्तव की ओर बढ़ा दी और ढेर सारा थूक गटक कर अपने सूखे गले को तर कर लिया।

"अगर चाहो तो इस नाटक में एक और दृश्य जोड़ कर तुम्हारा कुछ कल्याण कर सकता हूं ····।" श्रीवास्तव अंगूठी को अपनी अंगुली में डालते हुए प्रसन्न भाव से बोला।

"वह क्या ··· ?" वह उत्सुकता से श्रीवास्तव के चेहरे को देखता रहा।

"उस दृश्य में मुझे भी रंगमंच पर आना पड़ेगा, लेकिन होगा तुम्हारे फायदे का काम। अगर तुम्हें उस बुढ़िया की दोनों लड़कियों में से कोई पसन्द हो तो बोलो आगे का काम शुरू कर दूं······घर जमाई बनकर जब तक रहना चाहो रहो, मकान का किराया भी नहीं लगेगा और····· "

"माफ करो गुरुदेव, उन भैंसों से अपना बिछावन रौंदवाने का मेरा कतई इरादा नहीं हैं।" वह हंसते हुए बोला।

दोनों उठकर कैंटीन से बाहर निकले। वह बहुत प्रसन्न था। अपने को बहुत हल्का भी महसूस कर रहा था, पर श्रीवास्तव के प्रति उसकी धारणा में बहुत बदलाव आ गया था। उसने चलते-चलते श्रीवास्तव के कंधे पर हाथ रख कर कहा, "अच्छा गुरुदेव, एक बात बताओ, तुम किसी नाटक में नायक भी बने हो या हमेशा खलनायक का ही पार्ट अदा करते रहे हो ?"

श्रीवास्तव कुछ बोलने को हुआ पर उसका मुंह खुला का खुला रह गया। 

कहानी

आरम्भ, एक यात्रा का

—अशोक जेरथ

अणु को गम्भीर दशा में किसी टैक्सी में बैठाकर अस्पताल ले आया था। वह सारे रास्ते कराहती रही थी। सारे रास्ते अनेक विचार गुड़मुड़ होकर उभरते रहे थे। डाक्टर के कहे हुए शब्द बार-बार उसे झकझोर रहे थे। और अब उन शब्दों का विस्तार होता जा रहा था। अणु के कराहते चेहरे पर हाथ फेरते हुए उसके गालों को थपथपाता हूं। गत तीन दिन से पीड़ित, प्रसव वेदना से आकुल अणु का चेहरा पिलिया गया है। लेकिन उन कराहटों के सिवा और कुछ भी उसके मुंह से नहीं निकलता। उसके लिए मन में श्रद्धा हो आती है। कई बार हम किसी बात को महत्वहीन समझ कर यूं ही छोड़ देते हैं। वही बात किसी दूसरे द्वारा दोहराई जाने पर महत्वपूर्ण हो जाती है।

अणु तीन दिन से इसी अवस्था में पड़ी थी। कई बार चाहा था कि बाबा का विरोध कर उसे अस्पताल ले जाऊं। पर बाबा पारिवारिक इकाइयों में इतना विश्वास रखते थे कि उन्हें इस बारे में कहना फिजूल था। एक दायी का प्रबंध हो गया था जो पूरे विश्वास के साथ अपने कार्य में जुट गई थी। एक दिन औरतों में हो रही गुफ्तगू में कोई अजनबी स्वर सुनाई दिया था। मुझे ये स्वर लेडी-डॉक्टर का लगा था। अणु का कराहना और औरतों का एकटक डॉक्टर के परखते हाथों को निहारना, इस सारे वातावरण को मैं कुछ-कुछ भांपने लगा था। मुआयना करके वह कुछ देर आदेश देती रही थी फिर उसके मुड़ते ही सामना हो गया था। उसकी नजरें कुछ देर तक मेरे चेहरे पर टिकी रहीं फिर एक तीखी आवाज को मैंने सुना था—"कहां थे साहब ?" उसकी 'टोन' में कहीं पर कड़वाहट होगी नहीं जानता क्योंकि अचानक उछले इस प्रश्न की गोलाइयों में भटकते हुए भी मेरा ध्यान डॉक्टर के रौद्र रूप की ओर ही था। वह सारे इलाके में अपनी तरह की अकेली डॉक्टर थी। उसने शादी नहीं की थी। कहते हैं सारे खानदान ने शादी नहीं की। मां-बाप ने कभी की होगी उसके बारे

में भी अनेक अटकलें लगाई जाती हैं। फिर प्रश्न उठता है कि जिसने मां का दर्द नहीं सहा वह क्योंकर मां का दर्द जाने। लेकिन वह जानती थी, समझती थी। इस अवस्था के लिए मुझे ही उत्तरदायी ठहरा कर उसने एक लम्बा सा भाषण दे डाला था और फिर आदेशात्मक भाषा में अणु को अस्पताल ले जाने का हुक्म सुना दिया था और तब बाबा न नहीं कर सके थे।

टैक्सी के प्रत्येक हिचकोले पर अणु की कराहट तेज़ हो जाती थी। ड्राइवर समझदारी से कम स्पीड में गाड़ी चला रहा था।

अस्पताल भी अपना-अपना गौरव रखते हैं – अक्सर उनमें घुसते ही आदमी कई बार सोचता है। मन अस्थिर सा था। किसी तरह वार्ड में पहुंचे थे। डिटोल की गन्ध चारों ओर फैली थी। इस गन्ध को जब कभी कहीं पर भी सूंघता हूं तो अनायास अस्पताल के सीन उभर आते हैं। कारीडोर में भागती नर्सें, चलते स्ट्रेचर, कराहते मरीज और अपनी उम्र से बहुत आगे निकले उनके सम्बंधी, सब कुछ बेडोल सा लगता है। उस चहल-पहल में भी समायी चुप्पी बेबसी से उभर आती है। 'मेटर्निटी वॉर्ड' के 'ऑप्रेशन थिएटर' के बाहर आशा और निराशा के झूले में घंटों झूलते लोग अनेक बार तो लाल बल्ब की फिलक के साथ अपने हृदयों का तादात्मय करते हैं।

अणु का स्ट्रेचर 'ऑप्रेशन थिएटर' में चला गया था और मैं भी उस झूले में झूलती भीड़ की एक इकाई बन गया था। थिएटर से उभरती चिल्लाहटों तथा कराहटों में से पहचानना मुश्किल था कि इनमें से अणु की आवाज़ कौन सी है? ध्यान पास ही बैंच पर बैठी छोटी लड़की की ओर चला गया था। वह गुमसुम सी अपने में सिमटी बैठी थी। पहली झलक में ही लगता था कि उसके साथ कहीं कुछ ऐसा घटा है जो बड़ा अनहोना है। पूछने पर वह खाली सवाली नजरों से देखती रहती है। फिर धीरे-धीरे उसकी आंखें भर आती हैं। वह सुबकने लगती है। सहानुभूति के कुछेक शब्द जमी हुई अनुभूतियों को पिघला देते हैं। "दीदी अंदर है" उसने सुबकते हुए ऑप्रेशन थिएटर की ओर इशारा किया। एक पल के लिए ध्यान फिर थिएटर की ओर चला जाता है। जहां सर्जरी के औजारों के सरकने की आवाजों और कराहटों को मन ही मन महसूस करता हूं।

"क्या तुम्हारे साथ और कोई नहीं आया?" उसको और पास लाने की गर्ज से पूछता हूं। "दीदी जब अस्पताल आई थी तो जीजा जी गाली देते उसे टैक्सी तक छोड़कर चले गये थे"। समझने की कोशिश करने पर भी कुछ समझ नहीं आता। पर बाद में पता चला था कि उसे 'सातमासा' बच्चा हुआ है। शायद यही कारण रहा होगा। कुछ लोग इसे अपशकुन मानकर दोष स्त्री के माथे मढ़ देते हैं।

अणु का स्ट्रेचर निकला था। पीले जर्द चेहरे पर इक पतली सी मुस्कान थी जो मुझे देखते ही स्निग्ध हो आई थी। मैं स्ट्रेचर के साथ हो लिया था। स्ट्रेचर मेन वार्ड की कॉरीडोर में साइड रूम के पास जाकर रुक गया था। अणु को बिस्तर पर लिटा दिया गया और बच्चे को पास ही पड़े पालकी नुमा झूले में डाल दिया गया। बच्चे और मां

को स्वस्थ पाकर थोड़ा सकून मिला था। राहत पाकर कमरे का निरीक्षण शुरू हुआ था। उसी कमरे में पड़े दूसरे बिस्तर पर एक और औरत पड़ी थी जिसके दूसरी ओर पड़े स्टूल पर वही लड़की सहमी सी बैठी थी। वह एकटक हमारी ही ओर देख रही थी। उसकी दीदी उसी बिस्तर पर थी। बच्चे को रुई में लपेट कर साथ ही बिस्तर पर लिटाया हुआ था।

मेरे ज़हन में डिटोल की गन्ध समा रही थी। कमरे से निकलते ही दाइयों और नर्सों की भीड़ ने घेर लिया। बधाइयों का तांता लग गया था। उस बधाई में शुभ कामना कितनी है सोचने लगता हूं। पर उनकी कामना अवश्य थी। मेरा हाथ जेब में सरकने लगता है। मन ही मन उन्हें गिनकर हिसाब करता हूं फिर धीरे से हाथ बाहिर खींच लेता हूं। उनकी आंखें जेब में सरकते हाथ के साथ-साथ चमकने लगती हैं और खाली हाथ को वापिस आया देखकर वह चमक उपेक्षा के भाव के साथ बुझ जाती है। मैं इसका अर्थ समझता था पर बड़े असमंजस में था। घर से चलते समय सोचा ही किसने था। उनको समझाने के प्रयास से बोला था—"आपकी बधाई रही, अभी तो कुछ दिन यहीं हैं बधाई देकर ही जायेंगे।"

"हूं ......। सब ऐसा ही कहते हैं फिर चुपके से खिसक जाते हैं"—उपेक्षा भरी इस हुंकार ने मेरे अहम को कुचलकर मेरे अस्तित्व को झकझोर दिया था। मन अनमना सा हो आता है। वे एक-एक कर नाक फुलाती और टेढ़ी नजरों से देखती चली गईं थीं। मैं अपराधी सा कॉरीडोर में खड़ा उन्हें जाते देखता रहा था। अनायास ही मन का रोष उनकी ओर चला जाता है। ग्लूकोज़ चढ़ाते हुए अणु की बांह को छेदकर बार-बार रक्त की नाड़ी को खोजना पड़ता था। बार-बार प्रवाह रुक जाता जिसका सारा दोष अणु के माथे मढ़ कर वे स्वयं बातों में लग जातीं। जब दीदी ने इस ओर उनका ध्यान दिलाया तो वे उबल पड़ी थीं।

"यह देखना हमारा काम है और अगर आप चुप रहकर नहीं बैठ सकतीं तो बाहर चली जायें" मेरी उंगलियां जेब में पड़े-पड़े ही कड़कड़ाने लगती हैं। दूर कहीं घुड़कने की आवाज़ सुनता हूं। कोई नर्स किसी औरत को डांट रही थी—

"घर वाले तो सम्भालते नहीं और मुसीबत हमारे गले पड़ने को छोड़ जाते हैं। जैसे उनके बाप के नौकर हैं।" सामने के साइडरूम के बाहर कब से एक देहाती दीनता का भाव लिए खड़ा है। लगता है डॉक्टर की प्रतीक्षा में है पर डॉक्डर—किन्हीं गम्भीर बातों में लगी हैं। शायद किसी गम्भीर केस से भी ज़रूरी हैं उनकी गप्पें। वह बेचारा व्यग्रता में पांव बदलता प्रतीक्षा में खड़ा है और बार-बार कभी वॉर्ड की ओर और कभी अन्दर डॉक्टर के कमरे में देख रहा है पर फिज़ूल! देखा नहीं जाता ऐसे में तो 'डिटोल' की गन्ध ही भली। मन मसोस कर फिर कमरे में चला जाता हूं। देखता हूं कि मां और भाभी भी दीदी के साथ कमरे में हैं। इस सारे समय कब वे आईं, नहीं जानता। अपने को हल्का महसूस करता हूं। जैसे मेरे कन्धे से एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया हो।

मां के चेहरे पर सन्तोष के चिन्ह हैं। भाभी के चेहरे पर मृदुल मुस्कान। मां के चेहरे पर सान्त्वना के आसार बड़ी मुद्दत के बाद देख रहा हूं।

शादी के बाद से आजके दिन तक का सफर बहुत लम्बा और उकता देने वाला सफर रहा है। जिसमें मां सबसे अधिक थकी हैं। अणु की ओर देखती मां की आंखें मुझे याद हैं। वे दिन बहुत लम्बे और थका देने वाले दिन थे। मां ने कुछ कहा हो या नहीं पर उसकी दृष्टि सदा से ही अणु में कुछ तलाशती रही है। धीरे-धीरे अणु को मां का सामना करते हिचकिचाहट होने लगी थी वह उन ठण्डी तलाशती नजरों का सामना नहीं कर पाती थी। मां के सामने पड़ते ही वह 'नरवस' हो जाती और सप्रयास अपने को उनसे दूर रखती। और एक दिन मां का धैर्य टूट गया था—

"बहू अब तो बहुत देर हो गई। वह सामने वालों की सुनीता भी तो तुम्हारे साथ बहू बनकर आई थी लेकिन······मां की ठण्डी और चुभा देने वाली भाषा को भाभी ने बीच में ही टोक दिया था—"अभी परहेज कर रहे हैं—आजकल तो ऐसा चलता ही है फिर अभी बहुत जल्दी भी क्या है?" अणु मुंह नीचा किए पांव के अंगूठे से कालीन के रेशों को कुरेदती रही थी। उसके चेहरे पर अनेक रंग आकर चले गये थे। उसी रोज सायं एकान्त पाते ही उसके सब्र का बान्ध टूट गया था। छाती पर मुंह रखकर वह काफी देर सुबकती रही थी। मैं उसकी पीड़ा को समझने लगा था। उसकी खामोश आंखों में कातरता थी, एक याचना जिसकी मैं ताक नहीं लगा पा रहा था। मैं महसूस करने लगा था कि शादी के बाद स्त्री का अपने लिए नहीं तो दूसरों के लिए मां बनना बहुत जरूरी है। ये सब परहेज बाद की बातें हैं; फिजूल हैं।

मां बच्चे के मुंह में थोड़ा गुड़ लगाती है। वह चट्टाके मारने लगता है। भाभी हंस पड़ती हैं—

"जमते ही बदमाश है!"

मैं उस ओर देखने लगता हूं तो मां टोक देती हैं—

"पहले पण्डित से पूछ लेना।" फिर झट से लिखाने लगती हैं नोट करो यह भी ······और यह भी और इसको भी बाजार से लेते आना। उनके स्वर में आह्लादपूर्ण तत्परता महसूस करता हूं। उनका उबा देने वाला सफर खतम हो गया था। वे मंजिल तक पहुंच गई थीं पर मेरा सफर अभी बस शुरू हुआ था।



पूर्वजो

—गंगाप्रसाद विमल

आपसे ही ली थी यह दुनिया
और मालूम नहीं था
कि रोशनी की जगह सिर्फ टिमटिमाते
सितारे हैं। मेरी पकड़ से बाहर
माफ करें
आपके प्रतिनिधि ने
मुझे सदाबहार वन दिखाए
कहा
जो भी चमकता तारा है। वह आयेगा
कहा
एक स्वर्ग है। दो चार कल्पवृक्ष
कुछ कामधेनुएं
वरदान देने वाले अनगिनित देवता।
राक्षस पराजित हैं
और वे सब हमारी पकड़ में हैं।
उनसे हमारा संवाद है
और उन्होंने मेरे आगे
हिमालय खिसका दिया।
नहीं था विकल्प। मैं मजबूर था
मैंने वे सब बातें मान लीं

●

आपके प्रतिनिधि ने
सपनों की दुनिया दिखाई

यह कह कर कि सब सच हैं ।
पर जिस दिन
मेरी चेतना का ज्वार उफना
मैंने देखा
आपका प्रतिनिधि टूटी लालटेन लिए है
पितृ-पत्थर हटा कर
वे इबारतें पढ़ रहे थे जो कायाकल्प की थीं ।
मैंने उनकी झुकी कमर
चेहरे की झुर्रियां देखीं
आठ मुंह वाले परिवार का भविष्य पढ़ा
उनकी एक आंख नहीं थी और जो थी
उसमें से देवत्व लुप्त था ।
अगर मैं वह लोलुप आंख न देखता
तो मैं कैसे जान पाता
कि नदी में मछलियां हैं
समुद्र खारा है । और
चिड़ियां फांसने की नागफांस है ।
पैबन्द लगी उनकी आंख धसकी हुई थी
और बता रही थी
वह गई हुई है खोज में आठ दानों की
लेकिन वे बहती नदी में
लकड़ी के गोलाकार पर सवार थे ।
पूर्वजो
मैंने कभी नहीं सुना
लेकिन आपके प्रतिनिधि की
आत्मस्वीकृति में
यह था कि आपके पास
पारसमणि नहीं है । जो हारता है खेल में
वह पत्थर बन जाता है ।
आपकी स्मृति का पत्थर
बेडौल और विच्प है
आपके वंशज अब अनुपस्थित हैं । मुझे
दया हो आती है
आपके अनुपस्थित प्रतिनिधि पर

वह चुपके से । बिना मेरे जाने
मेरे कंधों पर लुढ़का गया है वह भार
पूर्वजो
मैं नहीं जानता था इतिहास
इतना बोझीला है
मैं अस्वीकार करता हूं—यह प्रतिनिधित्व
और लौटाता हूं
इतिहास
यह विरासत ।
अपनी वसीयत में मैं नहीं छोड़ना चाहता
बंटने के लिए खेल
तपने के लिए पेट
और न कोई अधिकार ।
मुझे देवत्व नहीं चाहिए
लौटा दो वह
निष्पाप-अबोधत्व ।

●

पिताओ आप राक्षसों से लड़े थे
इन्सानी दुनिया में ये राक्षस अब भी खड़े हैं
तुम्हारे नाप की बैसाखियां लिए
हर हत्याकाण्ड में
तुम्हारा नाम है । हर शिलाखण्ड इसका
प्रमाण है ।
तुम्हारी व्यवस्था में
अतीत सच था । मैं वर्तमान हूं
मैं भविष्य का रास्ता साफ कर रहा हूं ।
वह दुनिया दूसरी तरफ है
रक्त नदी के पार
वहां हत्यारों और अपराधियों के
पांव नहीं पहुंचे ।



खण्डित मूर्ति

—निज़ाम-उद्दीन

तुम्हारे इस नकाब में
नंगेपन की बू आती है
जा रहे हो आगे—देखते हो पीछे
कि कितने लोग
साथ रह गये
या साथ दे रहे हैं।
कदम मिलाकर चल रहे हैं।

तुम इन्हें नहीं,
अपने को ही दे रहे हो फ़रेब।
आइना अब छोटा पड़ गया है
बदल डालो इसे,
क्योंकि
तुम्हारा व्यक्तित्व तुमसे बड़ा हो रहा है।

लेकिन तुम आइने में
कहां देखते हो अपने को—स्वयं को
तुम्हारी नजर तो हमेशा ही
'परों' पर रहती है।
बहार लाने की अहमित झोंक में
तुम ने रेगिस्तान बिछा दिया है चारों ओर
हरीतिमा को सागर में बो दिया है।
इस रेगिस्तान में
दादुर वेदपाठ करते हैं

'पी-पी' की रट लगाते हैं पपीहे
रेत में चोंच डुबोकर जलकण निकालते हैं
कोयल भी अपना रोल अदा करती है
फिर भी
पानी नहीं
पल्लव नहीं
अंकुर नहीं
आम का बौर नहीं।
स्वर-तंत्री को तोड़कर
बातें छंदों में करते हो
लय-ताल में बोलते हो
गुलाब को पैरों से रौंदकर
कैक्टस से प्यार जताते हो
खण्डित देवमूर्ति के समक्ष
प्रणत नयनों से
लोगों की अर्चना का उपहास करते हो।
एक हाथ में खण्डित मूर्ति
दूसरे में कैक्टस
तुम परिवेश से कटे हो ?
तुम संदर्भ से जुड़े हो ?
तुम जानो।
शायद तुम्हें भविष्य के सपनों की
सता रही है भूख अभी।



क्रान्ति की पौध

—डॉ० सुधेश

परिवर्तन परिवर्तन चिल्लाते
न आया परिवर्तन
तो उन्होंने नारा दिया 'क्रान्ति' का
किसी ने कहा जनक्रान्ति
किसी ने कहा सम्पूर्ण क्रान्ति
कुछ ने दाग़ी कुछ गोलियां
फेंके कुछ हथगोले
एक दूसरे का सिर काट
हो गये शहीद
क्रान्ति आते आते रह गयी ।

क्रान्ति को जोड़ा कुछ ने जनता से
भूखे नंगे बेघरबार कंकालों से
दानव के जबड़ों में फंसे मज़दूर से
गिद्धों के बीच घिरे कृषक से
तो दानव ने कहा कि मैं भी हूं जनता
जनक्रान्ति चाहिये मुझे भी
बल्कि मैं जनक्रान्ति ला रहा हूं ।

क्रान्ति को कुछ ने जोड़ा समाज से
और अपने समाजवाद में
इतना बड़ा चोर दरवाज़ा रखा
जिसमें से पूंजीवाद का हाथी निकल जाए
देखते देखते वे समाजवादी

जपने लगे माला सर्वोदय की
जिसमें शोषित था आश्वस्त
और शोषक सन्तुष्ट ।
क्रान्ति
अब कॉफी हाउस की लम्बी लाइन
टी हाउस के शोर
आकाशवाणी के रिसेप्शन तक
आ गई है
इसी खुशी में
जबलपुर के कृषिवैज्ञानिकों ने
धान की नई पौध का नाम रखा है क्रान्ति,
अब हर किसान
अपने खेत में रोपेगा क्रान्ति
काटेगा क्रान्ति
हर मज़दूर खायेगा क्रान्ति
हर दुकानदार बेचेगा क्रान्ति
हर मण्डी बाज़ार
गांव शहर कस्बे में
सरकारी गोदाम में
मिलेगी क्रान्ति की पौध
जिसकी फसल तैयार होगी
तो कम से कम
पेट तो भरेगा।



दर्पण
उर्दू

मशीनी सभ्यता

—प्रितपाल सिंह 'बेताब'

हरफ़-ए-अव्वल की तशरीह में
सारे इल्फ़ाज़ को आज़माने के वाद
उसने सरहद की दोनों तरफ़
अपने तरकश से दो तीर छोड़े ।

सफ़ेद आदमी
ज़रद उफ़ुक में कहीं खो चुका था ।
परिन्दा कोई आस्मां पर न था,
जो तआकुब में उड़ता
कि सहराओं ने दूर ऊंचाई तक
अपनी आंखें बिछाई हुई थीं ।

कहीं से नये लफ़ज़ के
खलक़ होने की उम्मीद बाकी न थी ।

हाथ उठाए हुए आस्मां की तरफ़ देखना भी
तबीअत पे बार-ए-गिराँ जब हुआ
तो
लिबादा नया ओढ़ कर
वह मशीनों की आवाज़ में खो गया ।



गोदाम घर

—फूलचन्द मानव

टूटने या टकराने के महत्व को समझकर
मामूली आदमी का बयान लेने की
कोशिश करने लगे हो तुम !
नहीं जानते कि बेतरतीब वस्तुओं
और बेजान चेहरों का एक अलग सिलसिला
फटने वाले दिमाग से बचकर
कहीं भी फैल सकता है
क्या है, यह सब क्या है ?
कि बदबू की शुरुआत बाहर से ही होने लगी है
विस्फोटक पदार्थों की गंध तुम्हें रास न भी आये
फटकर फैला हुआ ज़हर धो देता है बजबजाते हुए अंग
अंधी तकलीफ, आंसू वाली आंखें
और आदमखोर हवाएं

हम, जिन्होंने सर के बल रेंगकर समेटा है इतिहास
फूलकर कुप्पा हो जायें भले ही
दिन—दो दिन के लिये, अपने अन्दर का सड़ रहा माल
कब तक ढोयेंगे— बेखौफ ! टूटने पर टकराने के···

मिट जायेंगे हाशिये
उतर जायेंगे पोस्टर कि मालगोदाम खाली है
पर वह जो मुसीबत, आज नहीं तो कल आने ही वाली है
उसको कहो टालोगे कैसे ?
कैसे नकारोगे सत्य कि सलीबें इन्तज़ार में हैं ?

मुट्ठियों में कैद मँडलों को तीसरी दहशत तक—
बचाये रखने का मोह मार नहीं डालेगा
मार नहीं डालेगा मिमियाती भाषा का विरोधाभास
कि नहीं, जाने वालों से कहो—
गोदामघर की चाभियां तीस साल से गुम हैं
और नव्वे साल का एक वटवृक्ष यह बात जान चुका है
टूटने और टकराने के महत्व को समझकर ।



अजन्मा अमानुष

—उपेन्द्र रैणा

निर्वसन होने से पूर्व
सोच लो……
एक बार फिर सोच लो
मेरी हथेली पर उग आये दांत
नग्न कर देंगे
व्यक्तित्व को तुम्हारे
और
प्रसव करोगी तुम
एक अमानुष का ।
मत ढूंढो इस आकार में
रूप अपना,
लटकते अपने ही गले
के ग्रन्थ में
मत करो अपने को अंकित—
अन्यथा
बेचना पड़ेगा
सरे-राह
एक अतिरिक्त ग्रन्थ,
चाटने से तुम्हारे
जिस पर
चेहरे अनगिनत
हो चुके हैं
पाषाण ।
तुम्हारे कपड़े उतारने पर

कर लेंगे विद्रोह
मेरी हथेली पर उग आये दांत
क्योंकि
अजन्मा वह अमानुष
कर देगा हत्या
सूर्य के घोड़ों की,
आवारा हो जायेगा
वेचारा सूर्य
और ढूंढने लगेगा
द्वार
तुम्हारे घर का ।
सम्भवत:
द्वार न खोलोगी तुम,
हो सकता है
फोड़ ले वह
अपनी आंखें—
फिर मत देना
उसकी संज्ञा मुझको—
क्योंकि मैं पहले ही—फोड़ चुका हूं—
अपनी आंखें ।



गीत

—श्रीकान्त जोशी

बादल झुके हुए री
खिड़की के तिरछे कोने से
मुझको अभी दिखे री।

पाहुन हैं, निश्चय उतरेंगे
अपनी परली बगिया
जहाँ मेंड पर बैठे होंगे
महकू, नहकू, सुखिया
कुछ अलसे कुछ झुलसे होंगे
बदन चमकते गेहुन
ऐसों ही की तो खातिर हैं
ये सब रुके हुये री
बादल झुके हुए री।

रही उमरिया, बाढ़ उतरने
पर ज्यों नद का पानी
पर तू अब तक समझ न पाई
इनकी राम-कहानी
मानी हैं ये, आते आते
दूर चले जाते हैं

चल रहने दे काम, न हों हम
नाहक चुके हुए री
बादल झुके हुए री।

अशगुन कर दें शगुन, न कोई
फिरे भूख की गैला
पेड़-वेड़ दर-दीवारों में
रहे न कोई मैला
छैला बन सज-धज आते हैं
जल-बाला के संगी
रेवड़ से नभ-बीड़ घेरते
तेवर चढ़े हुए री।
खिड़की के तिरछे कोने से
मुझको अभी दिखे री,
बादल झुके हुए री।



तीन अंग्रेज़ी कविताएं

—केशव मलिक

आवाज़ें

पिछले छः महीने
ख्यालों और शब्दों में
तनातनी रहती है !
गूंगे शब्द
कमरे में बंद रहते हैं
और खाली आवाज़ें
दूर घूमती हैं
अपनी मस्ती में !



जीवन

बह रहा है—
दूध की तरह बह रहा है—
दस अंगुलियों से होता हुआ
जबकि ज़माना प्यासा है !
अब लहू में इतना जोश नहीं
दिल का पिंजरा खाली है
जीवन बह रहा है कतरा-कतरा
अंधेरे विशाल सिनेमा-हॉल में !



सीमांत

क्या तुम इन्तज़ार / कर सकते हो ?
यदि नहीं / तो शायद /
सीमांत तक नहीं पहुंच पाओगे
यहां से वहां तक / 'किसी की ज़मीन नहीं'
इसके आगे आज़ादी है
क्या तुम में इतना धैर्य है
कि जी सको ?
मात्र दर्द पी सको ??
यदि नहीं तो प्रार्थना करो
भटको नहीं
रुको, रुको, रुको !



अनु० : केदारनाथ कोमल

नवेली चांदनी

—ओमप्रकाश गुप्त

फिर आज उतरी है नवेली चांदनी
छा गयी है इस हरे मैदान पर।

दूब के होंठों पे टिक कुछ बात करती
बुदबुदाती—
आज भी क्यों
उस मरे कंकाल की बू
रोम में तेरे समाई ?

है कहाँ वो चन्दनी खुशबू
क्षितिज तक
और उसके पार छायी
थी कि जिसके नाच पर
नदियां
बही थीं चूमती नभ के सितारे ;
हर लतर के वक्ष पर—
झुक आये थे
सूरजमुखी बेवक्त ही !
झुरमुटों से पंख में उम्मीद भर कर
झांकते थे सोनपाखी,
झूमती थी रात की रानी !

एक माली ने पलट दी थी धरा
क्यारियों ने पवन से—
'आओ' कहा।
श्वेत कलषों को सजाये प्यार से
गीत गाती थीं पुतलियां शबनमी !

हो गया क्या ?
नीर ही में दोष था ?
या रास ही आई नहीं—
थी वह नवेली रागिनी !

फिर आज उतरी है
नवेली चांदनी !



पुस्तकें और पुस्तकें

एक महाकाव्यात्मक उपन्यास

'राख और हीरे'[1] पोलिश साहित्य के सुप्रतिष्ठित लेखक येज़ी आन्द्रज़ेयेव्स्की के उपन्यास 'पोपियोल इदियामेन्त' का, रघुवीर सहाय द्वारा किया गया, एक सार्थक अनुवाद है। प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका को झेलने के बाद यूरोप ने जिस मानसिकता को ग्रहण किया, उसने वहां के लोगों में चीज़ों को साफ-साफ देखने की समझ पैदा की। युद्ध क्यों लड़ा जाता है, किन लोगों अथवा मूल्यों के लिये लड़ा जाता है, उससे किसको क्या लाभ पहुंचता है, आम आदमी की उसमें क्या भूसिका रहती है और यह कि ऐसा कब तक होता रहेगा?...यह कुछ ऐसे सवाल हैं जिन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति को झकझोर कर रख दिया था। हेमिंग्वे ने 'पुल' में, निर्मल वर्मा ने 'वे दिन' तथा अन्य अनेक लेखकों ने अपनी-अपनी कृतियों में इन प्रश्नों से जूझने का साहस किया है। प्राय: सभी लेखकों ने एक स्थापना को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है कि फ़ासिज़्म मनुष्य का सबसे बड़ा और पहला शत्रु है।

राख और हीरे में भी कुछ इसी प्रकार के प्रश्नों से टकराने की अकुलाहट लक्षित की जा सकती है। 'कोसेत्सकी' के चरित्र के गठन एवं निर्वाह के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है कि यह जानते हुये भी कि फ़ासिज़्म ने सारे नैतिक मूल्यों को नेस्तोनाबूद कर दिया था, हम उन लोगों को दोषी मानने को बाध्य हैं कि जिन्होंने फ़ासिज़्म की जघन्य शक्तियों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था, जिन्होंने उसके दबाव में आकर घुटने टेके थे। युद्ध समाप्ति की घोषणा के साथ कोसेत्सकी में जो परिवर्तन आता है वह कोसेत्सकी के लिये चाहे जो भी अर्थ रखता हो, मानवता के बृहत्तर हितों के सन्दर्भ में वह निश्चित रूप से निरर्थक है।

---

१. राख और हीरे (उपन्यास) / मूल : येज़्री आन्द्रज़ेयेव्स्की, अनुवादक : रघुवीर सहाय / प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, फ़िरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली / पृ० : २४८ / मूल्य : अठारह रुपये।

येर्ज़ी की विशेषता यह है कि उन्होंने युद्ध के अन्तिम तीन-चार दिनों के घटनाक्रम को अपने उपन्यास की गठन का आधार बनाया है···घटनाक्रम का टैम्पो गतिमान रहता है और एक के बाद एक घटने वाली घटनायें पाठकों की उत्सुकता बनाये रखती हैं। फ़ासिस्टों के हाथों बिके हुये खेलमित्स्की का चरित्र विशेष रूप से आकर्षित करता है। ऊपर से चाहे वह कितना ही कठोर बनने का यत्न क्यों न करे, भीतरी सतह पर वह मानवीय संवेदनाओं से जुड़ा हुआ है। क्रिस्टिना का प्रेम इन संवेदनाओं को जगाने का कारण बनता है। खेलमित्स्की अंततः श्चूका की हत्या करने के स्थान पर रिवाल्वर को फेंक कर मानो पूरी फ़ासिस्ट चेतना को फेंक देता है। लेकिन ऐसा करने मात्र से उसकी मुक्ति नहीं हो जाती। वह बदल कर भी नहीं बदल पाता। धीरे-धीरे उसने जिस मानसिक आवरण को प्रयत्नपूर्वक धारण किया था उसकी कुछ एक परतें अभी भी विराजमान हैं और इन्हीं के चलते वह मिलिशिया से अभी भी भय खाता है। सैनिकों का सामना न कर पाने की मानसिकता के कारण जब वह भागने लगता है तो पीछे से दागी गई एक सैनिक की गोली का शिकार हो जाता है। तलाशी के बाद जब सैनिक को कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मिलता तो उसकी पीड़ा घनीभूत होकर उपन्यास को नये आयाम प्रदान करती है। इस प्रसंग में युद्ध पूर्व और युद्धोत्तर मनःस्थिति का सच्चा चित्रण किया गया है। उपन्यास की अन्तिम पंक्ति में सैनिक के यह शब्द उपन्यास की संवेदना को गहराने के साथ मिहाउ के प्रति एक विशिष्ट दया का भाव भी जगाते हैं—**'ऐ भाई! ······तुम्हें भागने की क्या पड़ी थी।'**

समग्रतः 'राख और हीरे' एक कालजयी कृति है, एक महाकाव्यात्मक उपन्यास जिसमें येर्ज़ी ने शाश्वत मूल्यों की स्थापना की है। श्चूका, आंद्रजे, पोदगूर्स्की, द्रेवनोव्स्की तथा श्रीमती कोसेत्सकी जैसे पात्र अपना प्रभाव छोड़ने में समर्थ रहे हैं।

उपन्यास का अनुवाद इस बात की गवाही देता है कि अनुवादक ने मूल लेखक के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सफलता पाई है। किन्तु ऐसी महत्त्वपूर्ण कृति में प्रूफ़-रीडिंग की गलतियां अखरती हैं। कई स्थानों पर तो इससे कथ्य के सम्प्रेषण में पर्याप्त बाधा पड़ी है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियां दृष्टव्य हैं "वह **सिगर** मेज़ के करीब थी" (**सिगार** ; पृ० २३२) ; "···भीमकाय श्चूका की ओर ताकता रहा मानो अपने (?) का अर्थ उसके चेहरे में पढ़ना चाहता हो" (यहां (?) लगता है कुछ छूट गया है ; पृ० ९)। ऐसी ही गलतियां प्रायः हर दूसरे पृष्ठ पर देखने को मिलेंगी।

पुस्तक साज-सज्जा की दृष्टि से प्रभावी है और यदि प्रूफ रीडिंग की गलतियों की ओर ध्यान न दिया जाये तो निश्चित रूप से हिन्दी अनुवाद साहित्य की एक अनुपम थाती भी।

—र० मे०

दो कविता संकलन

एक ही जगह[२] में संकलित कविताएं मध्यवर्गीय चेतना की अभिव्यक्ति हैं और प्रायः कस्बों और शहरों की मानसिकता को झलकाती हैं। मध्यवर्गीय चेतना की एक खास पहचान यह भी है कि वह प्रायः अनिर्णय और द्वन्द्व की स्थिति में जीती चली जाती है। एक ओर वह 'स्वार्थ' और 'चालाकी' के मूल्यों को अपना सकती है तो दूसरी ओर 'आदर्श' तथा 'नैतिकता' के बोझ से भी दबी रहती है। अनिर्णयात्मक स्थिति का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है—**"किस किस को ले लूं / किस किस को न ओढ़ूं ? / निर्णय नहीं हो पाता।"** (पृ० २९)। इस निर्णय न ले पाने की स्थिति का कारण मध्यवर्गीय भीरूता ही अधिक है। उसे किसी भी कीमत पर पेट भरना ही प्राथमिक और जरूरी लगता है। इसीलिए 'संघर्ष' करना तो दूर, सोचना भी उसके लिए कठिन होता है। चाटुकारिता और चापलूसी ही उसके जीने के मूल्य बन जाते हैं—**"आप सब जानते हैं / अपने-अपने दफ़्तर की / दोहरी राजनीति से बचना भी चाहते हैं / और रचना चाहते हैं—एक स्वप्न संसार / लेकिन फिर / पेट की परम्परा में / दाँत आगे आ जाते हैं—हंसने-हिचकने के लिए।"** संकलन में दफ़्तरी माहौल को चित्रित करने वाली या उसे प्रतीक बनाकर चलने वाली कविताएं मुझे विशेष अच्छी लगी हैं क्योंकि वहां सतही चित्रण न होकर अनुभवात्मक चित्रण मिलता है। मानव में एक अच्छी बात यह भी है कि वे आज की कविता के एक प्रमुख हथियार 'व्यंग्य' से काम लेना बखूबी जानते हैं। जहां उन्होंने किसी काल्पनिक जोश या लालच की पूर्ति के लिए कवि मित्रों द्वारा लिखे गए 'अभियान गीतों' पर व्यंग्य किया है वहीं हौचपौच (दृष्टिहीन) राजनीति पर भी व्यंग्य किया है। इसी दृष्टि से मुझे मानव की दो कविताएं उल्लेखनीय लगती हैं। एक है **'एक एब्सर्ड कविता'** और दूसरी **'आखिर क्यों'**। दोनों ही कविताएं अपने-अपने फलक पर आज की अमानवीयता को 'व्यंग्य' से उकेरती हैं।

इन कविताओं में कहीं-कहीं थोड़ा-बहुत आक्रोश झलका है लेकिन वह खीझ के आस-पास के स्तर का ही बना रहता है। इसी कारण कवि की दृष्टि या तो एकांगी सी हो गई है या भ्रमयुक्त। तभी वह संघर्ष को भी अपने इस स्वर से फीका कर देता है— **"हड़ताल के दिनों से / रंग-बिरंगे / बिल्लों में / मातम-मनाती / तुम कभी सार्थक लगती हो / कभी निरर्थक।"** इसीलिए जहां कहीं ऐसा स्वर आ गया है—**"दुःख पल भर रहता है / लेकिन / जीवन सदा बना रहता है"** तो वह अच्छा लगता है।

कुछ कविताएं, इस संकलन में ऐसी भी हैं जो संग्रह को पिछड़ा हुआ बना देती हैं। ऐसी कविताओं का अपनी तरह का महत्व होते हुए भी वे आज की संवेदना का हिस्सा नहीं

---

२. 'एक ही जगह' (कविता-संग्रह) / फूलचन्द मानव, / पराग प्रकाशन, विश्वास नगर, दिल्ली, / पृ० ७२, / मू० १० रुपए, / प्र० सं० १९७७.

लगतीं। मेरा संकेत महापुरुषों आदि के विरुद गायन वाली कविताओं की ओर है। उनसे निश्चय ही बचा जाना चाहिए था। इसी प्रकार **'जिन्दगी'** और **'मौत'** जैसी कविताएं भी संग्रह की कमज़ोर कविताएं हैं जिनमें कवि प्रवचनी ही अधिक लगता है। संग्रह की अनेक कविताओं में भाषागत बहुत-सी कमज़ोरियां हैं जिन्हें मानव समय के साथ दूर कर लेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है। मानव को अनावश्यक 'तुकों' और 'लय' के प्रति दुराग्रह की सीमा तक ले जाने वाले आग्रह से भी बचना होगा। और इस सबसे ऊपर कवि को सीमित अनुभव-फलक से व्यापक परिवेश की ओर भी यात्रा करनी होगी तभी वह एक सार्थक भूमिका निभा सकता है और साथ ही अपनी कविता में वह चीज़ (यानी संघर्ष, सही मूल्यों की पहचान आदि) उभार सकेगा।

—दिविक रमेश

●

गीत भी अगीत भी[3] में सरोज वर्मा की ६४ कविताएं संकलित हैं। यह कविताएं संगीत कला, नृत्य और व्यक्तिगत अनुभूतियों से परिपूर्ण हैं। इन कविताओं में नारी मन के अन्तर्द्वन्द्व को बड़ी सटीक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। यह कविताएं एक सार्थक कवि की सम्भावनाओं की ओर इंगित करती हैं। कवयित्री की दृष्टि आशावादी है। वह स्पष्ट घोषणा करती है—**पांव निस्संदेह फंसे हों / दलदली से पंक में / मैं खिलूंगी फिर भी आली / रविकिरण के अंक में /** (अटूट सम्बन्ध)।

सरोज वर्मा में आधुनिकता की पहचान भी लक्षित होती है। वह अमूर्त प्रतीकों के माध्यम से सार्थक बात कहने का यत्न करती है—**वक्ष से एक चट्टान उभरी / बोझ हट गया / मोरो की हवा से / खरबूजे का बीज उड़ कर / गीली दीवार पर टंग गया /** (खामोशी और फ़ासला)।

वस्तुतः इस संकलन को आद्योपांत पढ़ने के बाद स्पष्ट लगने लगता है कि हिन्दी कविता के पृष्ठों पर एक और नारी हस्ताक्षर अपना स्थान बनाने के लिये संघर्षरत है और वह स्थान बना लेगा इसकी गवाही इस संकलन की कविताएं देती हैं।

—अ० श०

एक कहानी संग्रह

जम्मू-प्रदेश में जिन कहानीकारों ने हिन्दी में लिखने का प्रयास किया है उनमें बलनील देवम् का अपना ही स्थान है। उनके प्रथम कहानी संग्रह 'उल्कापात' में दस कहानियां

३. गीत भी अगीत भी (कविताएं) / सरोज वर्मा / मुक्तमाला प्रकाशन, ६६६, सैक्टर ११-बी० चण्डीगढ़ / प्र० संस्करण : १६७७ / पृ० ६२.

संकलित हैं। यह कहानियां सामाजिक जीवन की विसंगतियों, आर्थिक विपन्नता तथा दाम्पत्य-जीवन को संक्रमित करने वाले तत्वों के समक्ष प्रश्न-चिह्न लगाती हैं।

'उल्कापात',[3] 'आकाश के टुकड़े', 'कैंसर' तथा प्रतिक्रिया कहानियां उस आर्थिक जर्जरता का साक्षात्कार करवाती हैं जिसके कारण परिवार का पोषण करने वाला मुख्य सदस्य ही नहीं लघुतम् इकाई भी छटपटाने लगती है। 'उल्कापात' में मध्यवर्गीय परिवार के मुख्य सदस्य लक्ष्मी प्रसाद को अग्रवाल बिरादरी के लेन-देन ने इस कदर संत्रस्त कर दिया है कि वे पांच में से एक भी बेटी की शादी नहीं कर पाते, तभी तो एक कुंठित होकर रह गयी है तो दूसरी पागल। लेकिन लक्ष्मी प्रसाद पर उल्कापात उस समय होता है जब उनकी छोटी बेटी चांद किसी मक्कार के चंगुल में फंस जाती है। 'आकाश के टुकड़े' में देवम् ने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि स्कूटर तथा कार चलाने वाला उच्च-वर्ग दोषी होकर भी पैसे के माध्यम से पुलिस के हाथों से निर्दोष बच निकलता है और मजदूरी करने वाले रिक्शा ड्राइवर निर्दोष होकर भी दोषी ठहराये जाते हैं तथा पिटते हैं। पैसे के अभाव में इलाज करवा पाने की असमर्थता तथा मृत्यु का चित्रण हुआ है 'कैंसर' तथा 'प्रतिक्रिया' कहानियों में।

सामाजिक विसंगतियों का चित्रांकन करने वाली कहानियां हैं 'जिंदा गोश्त' और 'तांडव नृत्य'। 'तांडव नृत्य' में गरीब जानकर गुड्डी गांव के सरपंच के लड़के के हाथों लूट ली जाती है और 'जिंदा गोश्त' में बाप विवश होकर बेटी चंद्रिका से वेश्या का पेशा करवाता है। चंद्रिका की मानसिक उथल-पुथल को लेखक ने यूं व्यक्त किया है—"गिद्ध और मुर्दा गोश्त! पुरुष और जिंदा गोश्त! दोनों खेल एक से ही हैं। फ़र्क है तो सिर्फ़ इतना ही कि गिद्ध मुर्दा गोश्त को नोच-नोच कर उदर में डालता है और पुरुष जिंदा गोश्त को नोचता-खरोंचता है, चचोड़ता है।"

'जुड़ती हुई टूटन' में पति की सांस्कारिक परवशता को उजागर किया गया है। सन्तान के अभाव में पति पत्नी से निरन्तर खिन्न रहता है परन्तु यह जानकर कि वह मां बनने वाली है खुशी से झूम उठता है। 'जिंदगी' में दुःख-सुख के अन्तर को दार्शनिक शब्दावली में अभिव्यक्त किया गया है—"सुख और दुःख नाम की कोई चीज़ ही नहीं, और इस दुनिया में कोई किसी का नहीं, किसी का किसी के लिए कोई अर्थ नहीं। हम सब **बेअर्थ** हैं पर अपने ऊपर यूं ही अर्थों की तहें चढ़ाए बैठे हैं"।

प्रेम संबंधों की संजीदगी का वर्णन मिलता है 'भरा-पूरा पुरुष' तथा 'सिर्फ एक बार' कहानियों में। 'भरा-पूरा पुरुष' में प्रेमी-प्रेमिका सामाजिक अवरोधों की अवहेलना करके अपनी दुनिया बसा लेते हैं। 'सिर्फ एक बार' प्रेमी-हृदय की व्यथा प्रकट करती है। प्रेमी

---

३. उल्कापात / लेखक—बलनील देवम् / प्रकाशक—निस्तंद्र प्रकाशन जम्मू (तवी) / प्रथम संस्करण—१९७७ / मूल्य—दस रुपये।

एवं प्रेमिका भावावेश एवं अबोधता के कारण बिछुड़ जाते हैं और प्रायश्चित करते हुए एक-दूसरे की याद में तिल-तिल कर मरते हैं। देवम् ने यहां सृष्टि जैसी व्यक्तित्व सम्पन्न कार्यशील नारी के चित्रण द्वारा स्पष्ट किया है कि एक युवती चाहे सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित होकर धन-धान्य से सम्पन्न हो जाये लेकिन शादी की चाह एवं दाम्पत्य-जीवन की सुखद परिकल्पना उसके एकान्त को दुरूह बना ही देती है।

—**अनिल गोयल**

एक विशेषांक

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की रजत जयंती के उपलक्ष्य में प्रकाशित **समाज कल्याण** के विशेषांक में सामाजिक गतिविधियों के सन्दर्भ में रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक सामग्री संकलित है। यह अंक जहां एक ओर केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की गत पच्चीस वर्षों की गतिविधियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है वहीं दूसरी ओर बोर्ड की संस्थापक अध्यक्षा डॉ० (श्रीमती) दुर्गाबाई देशमुख के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुये अपने ही ढंग से सम्मान भी व्यक्त करता है।

डॉ० शरणसिंह ने **समाज कल्याण में सरकार की भूमिका** की परख-पड़ताल की है। उनकी स्थापना है कि साधनों के सीमित होने की वजह से योजनाओं के क्रियान्वयन में सरकार बहुत अधिक भाग नहीं ले सकती...सरकार केवल इस दिशा में बढ़ावा दे सकती है। इस दिशा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काम गैर-सरकारी (ऐच्छिक) संस्थायें कर सकती हैं।

कुसुम वानखेड़े ने अपने अनुभव के आधार पर समाज कल्याण बोर्ड से प्राप्त कड़वे-मीठे अनुभवों को बड़ी रोचक शैली में अभिव्यक्ति दी है।

लेखों को पढ़ना साधारण पाठक के लिये सदैव परिश्रम साध्य कार्य रहा है। सम्पादक ने अन्ततः रामदेव आचार्य, म० क० महताब की कहानियां तथा सुल्तान अहमद और सत्यपाल चुघ की कविताएं प्रकाशित करते हुये पाठकों के मनोरंजन का विशेष ध्यान रखा है।

विशेषांक की सज्जा विशेष-रूप से ध्यान आकर्षित करती है। इसमें संदेह नहीं कि आकर्षक छपाई, बढ़िया चित्र और संतुलित सामग्री के चयन के आधार पर सम्पादक इसे एक संग्रहणीय अंक बना सकने में सफल रहे हैं।

—**र० मे०**

अकादमी डायरी

अप्रेल १९७८

- बैसाखी के शुभ अवसर पर ज० क० राज्य के मुख्यमंत्री, एवं अकादमी के अध्यक्ष, जनाब शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने अपने कर-कमलों द्वारा, जम्मू के सौंदर्य में अभूतपूर्व वृद्धि करने वाले, **मनोरंजन कॉम्पलैक्स** का उद्घाटन किया। इस अवसर पर अकादमी की ओर से एक रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किया किया। कॉम्पलैक्स की मनोहारी छटा में अकादमी के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया नृत्य एवं संगीत का यह कार्यक्रम एक अनोखा दृष्य प्रस्तुत कर रहा था जिसे देखकर समग्र उपस्थित समुदाय आनन्दविभोर हो उठा और उसने इस कार्यक्रम की बड़ी प्रशंसा की।

- २८ अप्रेल १९७८—जम्मू के सांस्कृतिक इतिहास में एक स्वर्णिम दिन। अकादमी के अध्यक्ष माननीय शेख साहब ने **'अभिनव थियेटर'** का उद्घाटन किया। इस थियेटर के निर्माण में लगभग ८ वर्ष लगे और इस पर कुल ४६.५० लाख रुपये खर्च हुये।

  इस अवसर पर अकादमी की ओर से इसके सचिव, श्री मुहम्मद यूसुफ़ टेंग, ने राज्य सरकार को, उसकी सहायता के लिये धन्यवाद देते हुये कहा कि राज्य सरकार, विशेष रूप से शेख साहब, ने यदि इस थियेटर के निर्माण में व्यक्तिगत रुचि न ली होती तो इस ख्वाब की ताबीर मुमकिन न होती।

  अपने भाषण में महामहिम शेख साहब ने फ़रमाया कि अकादमी का यह सांस्कृतिक कॉम्पलैक्स एक पवित्र स्थान के समकक्ष है और हमें चाहिये कि हम इसकी पवित्रता एवं महानता को अक्षुण्ण बनाये रखें। उन्होंने आशा प्रकट की कि इस थियेटर के निर्माण से जम्मू के लोगों की जिस बड़ी पुरानी इच्छा की पूर्ति हुई है, वे उसे ध्यान में रखते हुये इस थियेटर का भरपूर इस्तेमाल करेंगे और इस प्रकार जम्मू में सांस्कृतिक समृद्धि के एक नये दौर को प्रश्रय देंगे।

मई १९७८

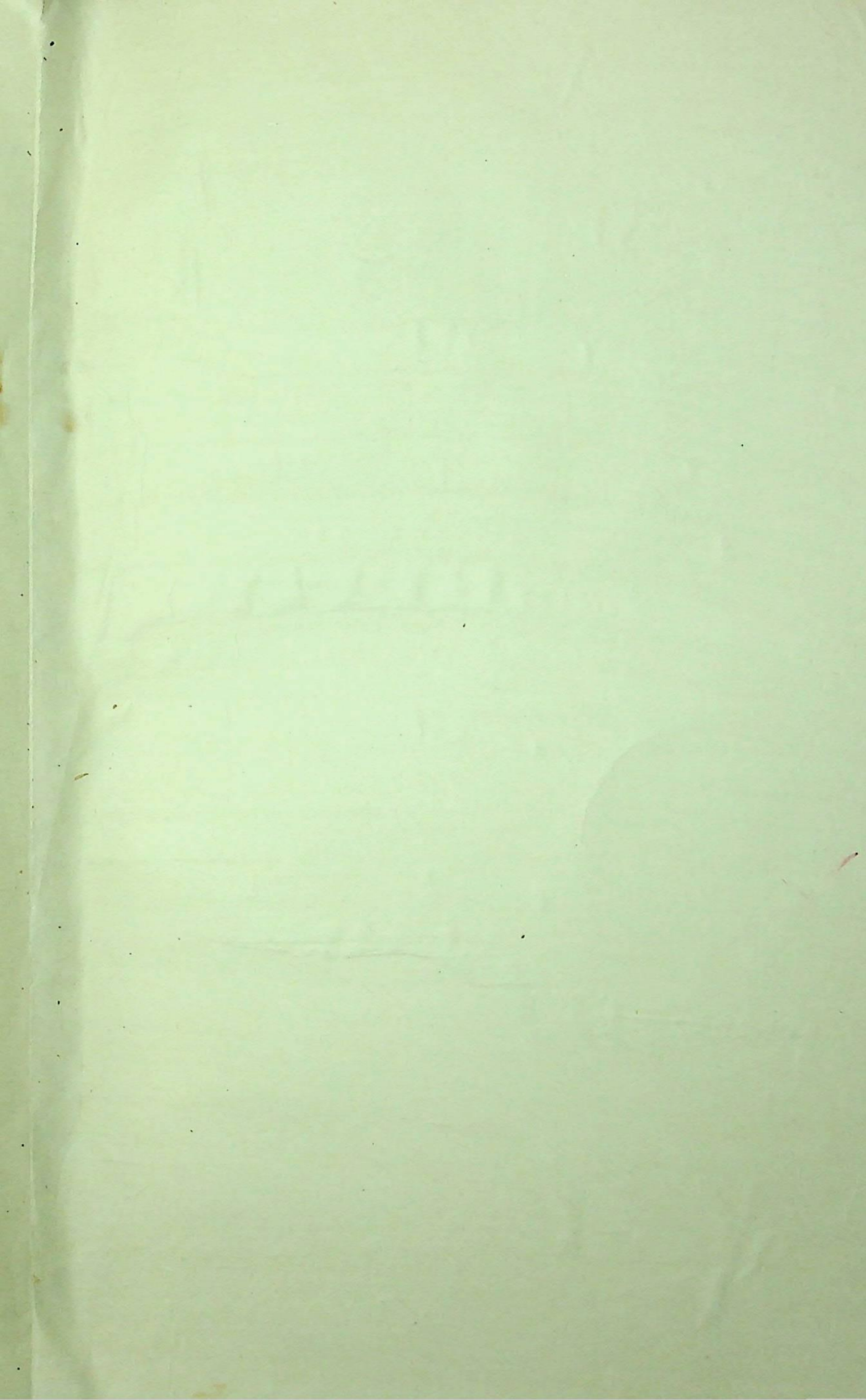
- १ तथा २ मई को भारत स्थित अमरीकी दूतावास के सहयोग से निम्नांकित फिल्मों के प्रदर्शन की व्यवस्था की गई :—

  १. एले सेलिब्रेट्स इलिंगटन २. विज़न यू० एस० ए० ३. ड्यूक ऑफ मानटेरी।

जून १९७८

- ३० जून १९७८ को रामनगर कस्बे में एक देहाती मुशायरे का आयोजन किया गया जिसमें जम्मू से आमंत्रित कवियों के साथ स्थानीय कवियों ने भी अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। इस प्रकार अकादमी द्वारा ग्रामीण अंचल में नई पीढ़ी की तलाश का काम जारी है। हमें प्रसन्नता है कि अकादमी के इन प्रयत्नों के फलस्वरूप अनेक नई प्रतिभायें साहित्याकाश पर उभरी हैं।





R. No. : 28871/78

Sheeraza Hindi (Quarterly) April-June, '78



A Publication of

J&K Academy of Art, Culture & Languages, Jammu.